दिसंबर १९९९-Rs. 10/-

चन्दामामा

Colgate Dr. Rabbit's Puzzle

Smita has an appointment for her dental checkup.
Can you find the way for her in 20 seconds or less ?

START

SCHOOL

DENTIST

FINISH

BOOK STORE

Copyright © 1994 Colgate-Palmolive Company.
All rights reserved. A Global Oral Health Initiative.

चन्दामामा

सम्पुट-२८ दिसंबर १९९९ सञ्चिका-४

अन्तरङ्गम्

Printed and Published by B. Viswanatha Reddi at B.N.K Press Pvt. Ltd., Chennai-600 026 on behalf of Chandamama India Limited, Chandamama Buildings, Vadapalani, Chennai-600 026. Editor: Viswam

इस माह की विशेष

स्वर्ण सिंहासन

कुदरत का खेल

प्रथम स्वतंत्रता-संग्राम

आधा आशीर्वाद-आधा शाप

उत्तम
उपहार

आप अपने
दूर रहनेवाले
करीबियों के लिए
सोच सकते हैं

चंदामामा

**उन्हें उनकी
पसंद की भाषा में एक
पत्रिका दें**

असमिया, बंगला, अंग्रेजी, गुजराती, हिन्दी, कन्नड़,
मलयालम, मराठी, उड़िया, संस्कृत, तमिल व तेलुगु

और उन्हें घर से दूर घर के स्नेह को महसूस होने दें

शुल्क
सभी देशों में एयर मेल द्वारा
छह अंक ३०० रुपये
बारह अंक ६०० रुपये

अपनी रकम
डिमांड ड्राफ्ट या मनी आर्डर द्वारा 'चंदामामा इंडिया लिमिटेड' के
नाम भेजें
सेवा में:

प्रकाशन विभाग
चंदामामा इंडिया लिमिटेड
चंदामामा बिल्डिंग्स, वडापलानि, चेन्नई-६०० ०२६

संस्थापक
चक्रपाणि
बी. नागी रेड्डी
संपादक
विश्वम
संपादकीय सलाहकार
रस्किन बंड
मनोज दास
डिजाइनिंग व तकनीकी
सलाहकार
उत्तम
प्रकाशक
बी. विश्वनाथ रेड्डी
मार्केटिंग निदेशक
बी. मधुसूदन
प्रधान कार्यालय
चंदामामा बिल्डिंग्स
वडापलानि,
चेन्नई-६०० ०२६
फोन-४८१७७८
अन्य कार्यालय
भुवनेश्वर
दिल्ली
मुंबई

इस अंक की कहानियों, लेख व डिजाइनों पर प्रकाशक का विशिष्ट स्वामित्व है और इसकी किसी भी तरह से कॉपी करने/उपयोग करने पर कानूनी कार्रवाई की जाएगी।

हाथ में हाथ, आप के साथ

"कहाँ हो तुम चंदामामा?"

बहुतों ने यदि यह प्रश्न ऊँचे स्वर में पुकार कर पूछा तो अन्य बहुतों ने भी अपने प्रिय साथी को पत्र-पत्रिकाओं की दुकानों पर खोजते हुए या डाकिये के थैले में टटोलते हुए यह सवाल मन ही मन किया।

चन्दामामा की तुम से मिलने की ललक कम तीव्र नहीं थी। इसने तुम्हारा अभाव उतना ही महसूस किया जितना कि तुमने।

सच! तुमसे फिर एक बार मिलकर आह! कितनी खुशी हो रही है। और वह भी बच्चों को समर्पित उस दिन के तुरन्त उपरान्त जो उनके प्यारे चाचा नेहरू का जन्म दिवस (१४ नवम्बर) है।

अन्त भला तो सब भला। हमारे मध्य आये इस अन्तराल ने, वास्तव में एक दूसरे के प्रति हमारे स्नेह को और भी गाढ़ा कर दिया है। चन्दा मामा की यह दृढ़ धारणा है कि तुम सब की शुभकामना और आवश्यकता ने इस पत्रिका के पुनरागमन में बड़ा हाथ बंटाया है।

चन्दामामा स्नेह, समर्पण तथा निस्सन्देह कल्पनाशीलता के साथ तुम्हारी सेवा करने की कामना करता है। नई शताब्दी के आरम्भ के साथ तुम्हारी यह पत्रिका तुम्हारे समक्ष नये-नये खजानों को खोलती रहेगी।

इस अंक में प्रकाशित नये स्तम्भों की घोषणाओं को पढ़ना न भूलना।

चन्दा मामा तुम सब का अभिवादन करता है और तुम्हारे साथ हाथ में हाथ मिलाकर नई शताब्दी और सहस्राब्दी में कदम रखने की उत्सुकतापूर्वक प्रतीक्षा करता है।

Eat Healthy,

Think Better.

The Indian ethos of the unity of mind and body is as ancient as our culture. And this rich Indian heritage has inspired dynamic new motto at Britannia.

The new Britannia captures the very essence of purity, energy and freshness, implicit in all our food products.

After over seven decades of being an inseparable part of your daily life, now Britannia ushers you, into a healthier and tastier future.

Lintas Bil 2014

प्रिय पाठकों, संगरक्षकों, तथा शुभचिन्तकों!

मैं आप को हर्ष और विषाद की एक विचित्र अनुभूति के साथ यह पत्र लिख रहा हूँ। यह अपार हर्ष की बात है कि हम आप के प्रिय साथी चन्दामामा को पुनर्जीवित करने में समर्थ हो पा रहे हैं। विषाद यह है कि हमने आप को, इससे, एक वर्ष से अधिक समय तक वंचित रखा।

मैं उन तूफ़ानों का लेखा-जोखा देकर आपको बोझिल नहीं करना चाहता, जो एक के बाद एक, तेज़ रफ़्तार में आकर प्रकाशन को निगल गये। कोई मानवीय पुरुषार्थ नहीं, बल्कि केवल माँ भगवती की कृपा ही इस संकट से उबार सकती थी। आप की पत्रिका-ज्ञान और आनन्द का सन्देश वाहक, एक बार फिर आप के हाथों में है-यह इस बात का प्रमाण है कि भगवान को हमारे प्रयास कितने पसन्द हैं, एक उदात्त उद्देश्य के लिए, वे चाहे कितने ही नगण्य क्यों न हों। यहाँ वह उद्देश्य है-संस्कृत और अंग्रेजी के अतिरिक्त, अपनी-अपनी मातृ-भाषा में आनन्ददायक और उद्देश्यपूर्ण सामग्री के साथ भारतीय बालकों को आनन्द प्रदान करना और यह प्रेरणा देना कि भूगोल और भाषा की सीमा को लांघ कर कैसे वे एक साथ मिलकर सपने देख सकते हैं और अपना ज्ञानवर्द्धन कर सकते हैं। मैं कृतज्ञता में, भगवान के सामने, नतमस्तक हूँ।

इस संसार में भागवत कृपा प्रायः स्वनाम-धन्य मानव-यंत्रों के माध्यम से कार्य करती है। चन्दामामा के सम्बन्ध में, जिन महानुभाव ने इस अहम भूमिका का निर्वाह किया है-वे हैं, चन्दा मामा के अनन्य प्रेमी एवं सृजनशील उद्यमी श्री विनोद सेठी। मैं उन्हें बधाई देता हूँ और विश्वास दिलाता हूँ कि उनका यह सृजनात्मक हस्तक्षेप बाल-साहित्य के इतिहास में बहुत ही महत्वपूर्ण सिद्ध होगा। और चन्दामामा के उन असंख्य प्रशंसकों को भी कोटि-कोटि धन्यवाद देता हूँ जिन्होंने तीव्रता और उत्कंठता से इसके पुनरुज्जीवन की आकांक्षा की। उन्की शुभकामनाएं हमारी मूल्यवान सम्पत्ति हैं।

पत्रिका का नवीन रूप न केवल पाठ्य सामग्री, उसकी विविधता और चित्रांकन में समृद्ध होगा, बल्कि उसका कलेवर भी सुरुचिपूर्ण और आकर्षक होगा। यह इलेक्ट्रोनी संस्करणों में भी उपलब्ध हो सकेगा, जैसे-काम्पैक्ट डिस्क। हम प्रकाशन-जन्य अन्य उद्यमों (इंटरप्राइजेज) के विषय में यथा समय सूचित करेंगे।

प्रकाशन-प्रबन्ध की ओर से, मैं आप की पत्रिका के आधी शताब्दी से भी अधिक जीवनकाल में दुर्भाग्यपूर्ण रुकावट के लिए क्षमा-याचना करता हूँ। मैं वचन देता हूँ कि इस बदलते हुए समय में, सर्वोत्तम के साथ कदम मिलाकर चलते हुए, चन्दामामा के अपनी अनोखी भूमिका के निरन्तर निर्वाह करते रहने में, हम और हमारे सहकर्मी कोई भी कसर बाकी नहीं छोड़ेंगे।

B. Viswanatha Reddi

भवदीय

(बी. विश्वनाथ रेड्डी)

प्रकाशक

समाचार झलक

दवा-रोग से अधिक जानलेवा!

नई दिल्ली में ''द देल्ही सोसाइटी फॅार द प्रोमोशन ऑफ द नेशनल यूज़ ऑफ ड्रग्स'' नाम की एक संस्था है। विश्व स्वास्थ्य संगठन (W.H.O.) के अनुरोध पर इस संस्था ने भारतीयों की, दवा की गोलियां निगलने की आदत पर एक सर्वेक्षण किया। सर्वेक्षण का जो निष्कर्ष निकला वह बड़ा ही भयावह था। डॉक्टर जल्दबाजी में दवा लिख देते हैं और रोगी प्रकृति को या शरीर की स्वाभाविक रोग

निवारक क्षमता को बिना अवसर दिये जल्दबाज़ी में दवा निगल जाते हैं। देश की राजधानी के एक प्रमुख अस्पताल में ६१ प्रतिशित एंटीबायोटिक दवाइयाँ दी गईं। बहुत रोगों में वे बिल्कुल आवश्यक नहीं थीं। बात-बात पर दवाई खाने की आदत का नतीजा रोग से भी अधिक जानलेवा सिद्ध हो सकता है। दवाइयों के अनावश्यक प्रयोग से उनकी कीमतें भी बढ़ जाती हैं, जबकि लाखों रोगियों को अत्यन्त अनिवार्य दवाइयां तक नहीं मिल पातीं।

छात्रों द्वारा अश्लीलता का विरोध

यह सोचना गलत होगा कि छात्र बड़ी आसानी से अभद्रता और अश्लीलता का शिकार बन जाते हैं। हाल में एक लोकप्रिय सप्ताहिक ने एक लोकप्रिय लेखक के उपन्यास से एक अश्लील अंश प्रकाशित

किया। जी.सी.जी. चंडीगढ़ के बी.ए. के अन्तिम वर्ष के छात्रों ने सामूहिक रूप से सम्पादक के सामने विरोध प्रदर्शन किया। हम उन छात्रों को बधाई देते हैं।

कुत्ते बिल्ली से बाज़ी मार गये

ऐसा विश्वास किया जाता है कि बिल्ली की नौ ज़िन्दगियाँ होती हैं। यानी वह आसानी से मौत के हाथ नहीं लगती। यह सच हो या न हो, लेकिन दो कुत्तों ने यह साबित कर दिया कि उनमें सभी

प्राणियों से कहीं अधिक सहनशक्ति और दम है। तायवान में एक विनाशकारी भूकम्प में बहुत संख्या में लोग मारे गये। लेकिन ४३७ घण्टों के पश्चात मलबे से दो रिरियाते जीवित कुत्तों को खींच कर निकाला गया। एक कुर्सी ने उन्हें बचा लिया। पास पड़ी फ्रीजर से वे खाते-पीते रहे।

तीसरी बार प्रधानमंत्री

श्री अटल बिहारी वाजपेयी ने तीसरी बार प्रधानमंत्री के रूप में पद एवं गोपनीयता की शपथ ली। पहली बार मई १९९६ में १३ दिनों तक व दूसरी बार १८ दलों की गठबंधन सरकार के नेतृत्वकर्ता के रूप में वे मार्च १९९८ से १३ माह तक इस पद पर रहे। एक हाजिरजवाबी ने टिप्पणी की, 'अगर वे फिर से सत्ता में आए तो अगले १३ सालों तक भारत का नेतृत्व वही करेंगे।'

इस बार उनकी पार्टी-भारतीय जनता पार्टी-के साथ २३ अन्य दल थे, राष्ट्रीय जनतांत्रिक गठबंधन ने १० अक्तूबर को गठित १८वीं लोकसभा की ५४० सीटों में से लगभग ३०० सीटों पर जीत हासिल कर स्पष्ट बहुमत प्राप्त किया।

उनकी मुख्य विरोधी भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस व उसकी सहयोगी आधा दर्जन पार्टियों को १३५ के आसपास ही सीटें मिल पाईं।

पहली बार १८ घटकों का गठबंधन १९९८ में सत्ता में आया। प्रयोग अच्छी तरह प्रारंभ हुआ और देश सरकार में स्थायित्व देखने लगा। इसका श्रेय श्री वाजपेयी जैसे, वरिष्ठ राजनीतिज्ञ को है, जिन्होंने एक साल तक इस उम्मीद में अपने कुनबे को एकजुट रखा कि अंततः किसी भी संकट से उबर जाएंगे। लगभग हर मोर्चे पर देश ने प्रगति महसूस की और श्री वाजपेयी को न सिर्फ भारत, बल्कि बाहर भी एक योग्य प्रशासक व राजनेता के रूप में देखा जाने लगा। उन्होंने देश के हितों की सुरक्षा सुनिश्चित की। लेकिन, सहयोगियों ने गठबंधन छोड़ने का कोई न कोई कारण ढूंढ ही लिया और देश को एक और चुनाव झेलना पड़ा। लेकिन वाजपेयी जी ने जो छवि बनाई वह बरकरार रही और भारत के अधिकतर लोग उन्हें फिर से प्रधानमंत्री के रूप में देखना चाहते थे।

युवा अटल छात्र आंदोलन में सक्रिय थे। १९५७ में उन्होंने संसदीय चुनाव लड़ा और जनसंघ के चार विजयी उम्मीदवारों में से एक बने। १९८९ में वे लखनऊ व विदिशा से खड़े हुए और दोनों सीटों से जीते। १९९१, १९९६, १९९८ व १९९९ में वे लखनऊ से जीते। १९७७ में श्री मोरारजी देसाई मंत्रिमंडल में उन्होंने अपने लिए विदेश मंत्री का पद चुना, जिसपर उन्होंने कुशलता की छाप छोड़ी खासकर पाकिस्तान से दोस्ताना संबंध कायम कर। श्री वाजपेयी ने संयुक्त राष्ट्र की आम सभा को हिंदी में संबोधित कर एक रिकार्ड बनाया।

हमारे प्रधानमंत्री थियेटरों में फिल्म देखना व मैदान में हॉकी व फुटबाल देखना पसंद करते हैं। उन्हें पालतू पशुओं के रूप में कुत्ते व बिल्लियां बहुत प्यारे लगते हैं और मौका मिलने पर सोते वक्त पंचतंत्र की कहानियां पढ़ते हैं।

उनके योग्य नेतृत्व में भारत एक गुंजायमान राष्ट्र बनने की आशा कर सकता है।
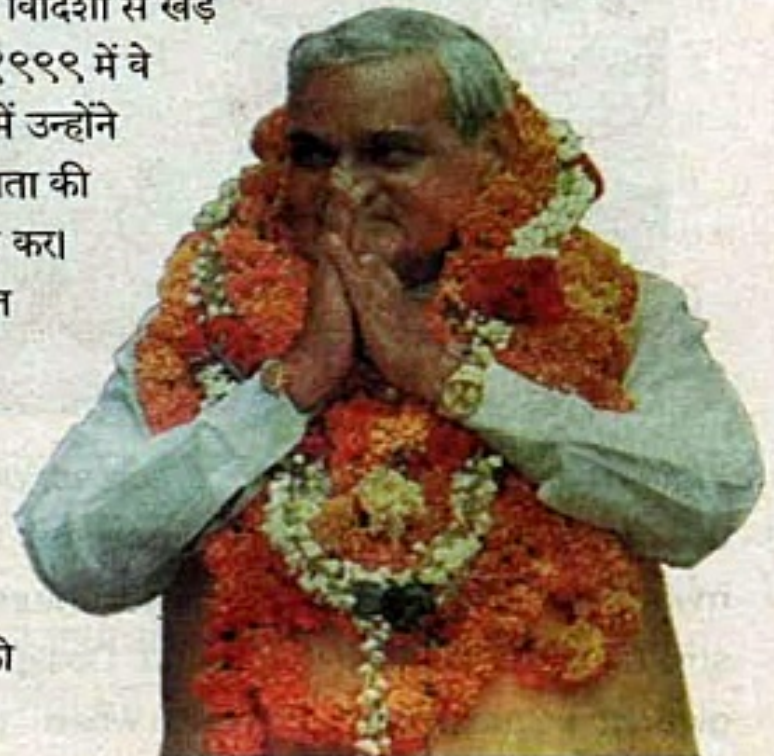
Hop, skip and jump through the wonder years...
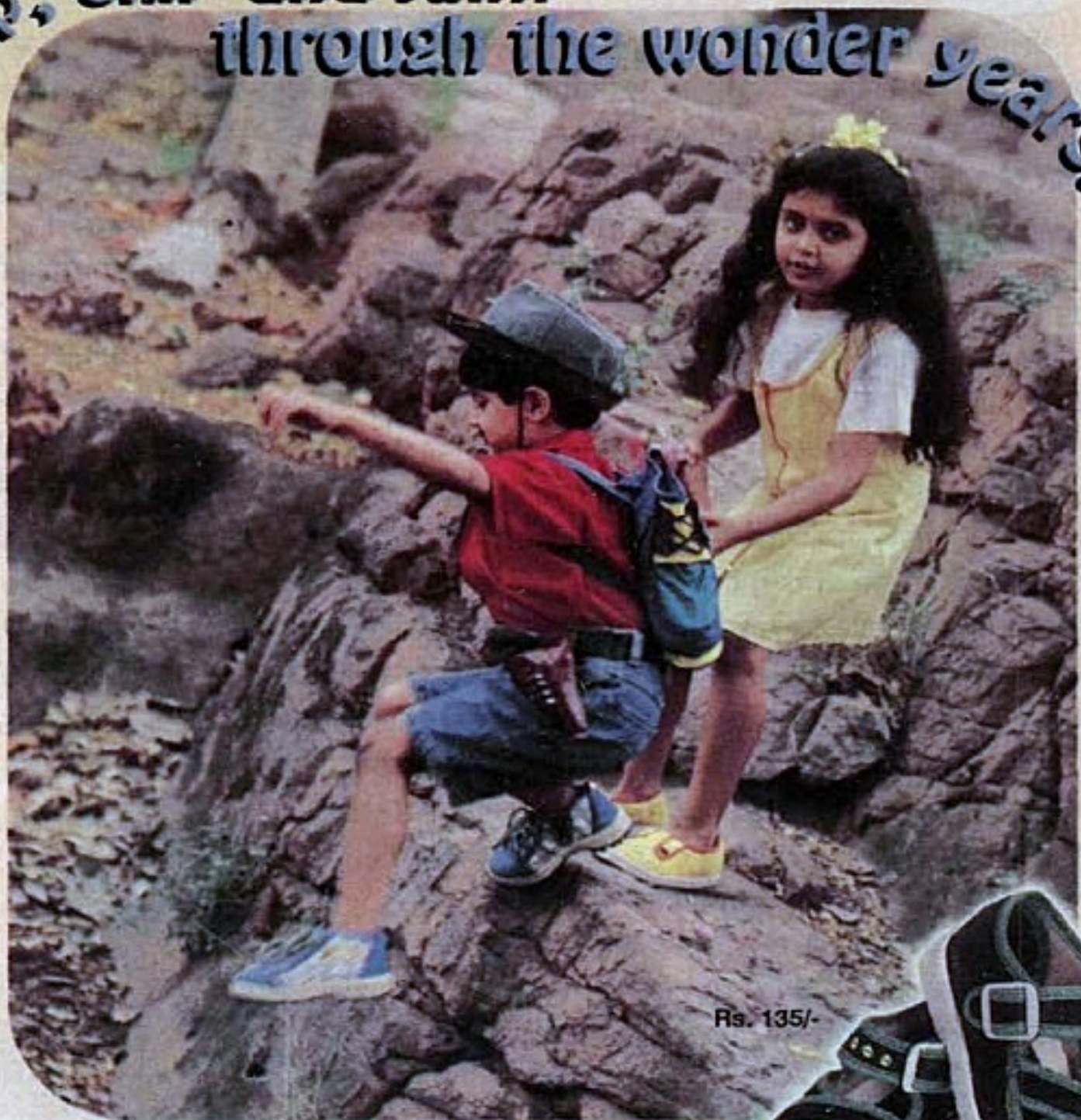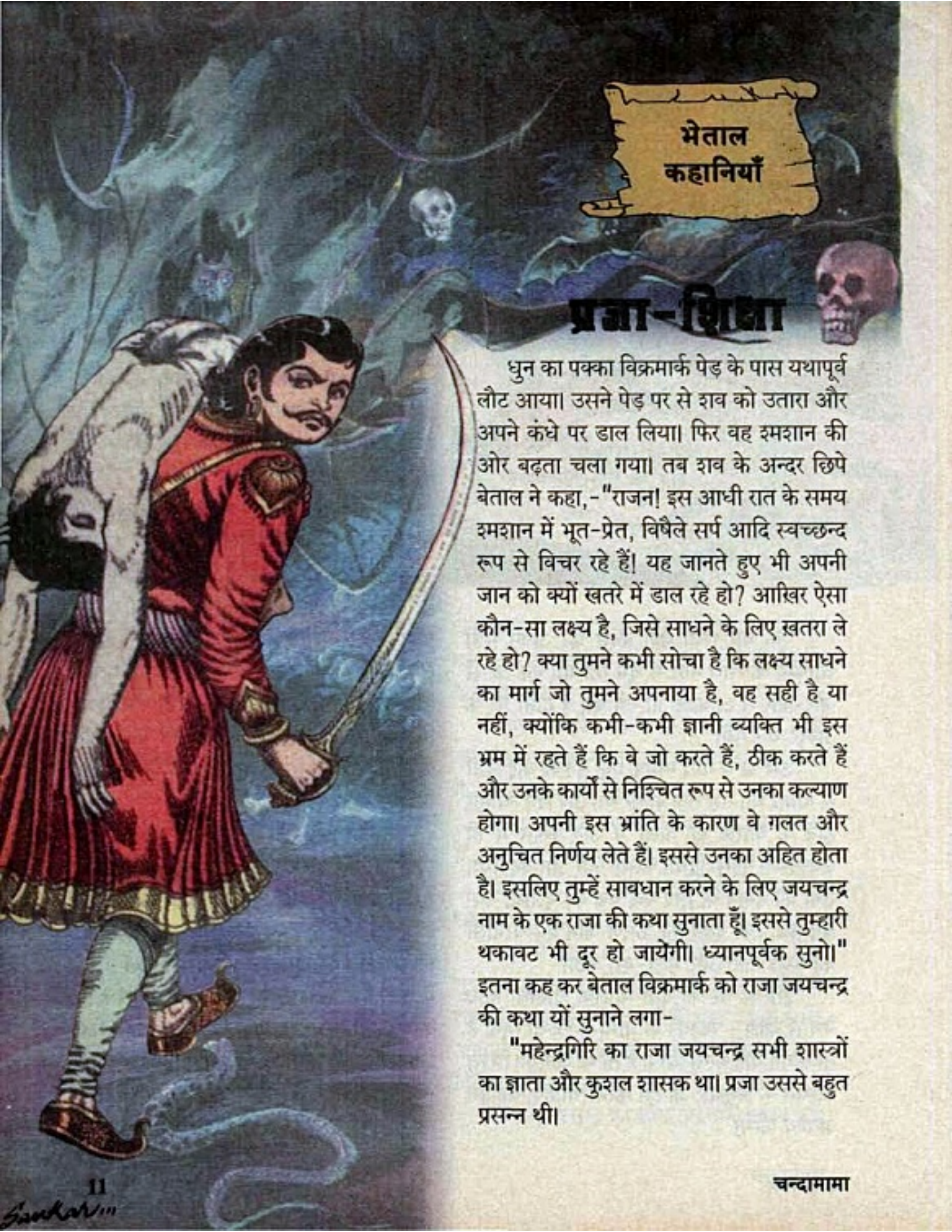
Rs. 135/-

Fight make believe dragons, cross perilous seas or catch a winged fairy fluttering through the meadow. Take all of life's adventures big and small, in your stride with Footfun. Designed purely to give the maximum comfort when playing and for fun times.

FOOTFUN®

Non-stop fun

e Footfun range is priced from Rs. 120/- to 495/-, available in sizes 3 to 8 • The model featured above is 'Titbits' priced at Rs. 135/- (M.R.P inc taxes). The maximum retail price may vary with style and material and can change without prior notice • Liberty Group, P.O. Box 103, Karnal - 1

प्रजा-शिक्षा

धुन का पक्का विक्रमार्क पेड़ के पास यथापूर्व लौट आया। उसने पेड़ पर से शव को उतारा और अपने कंधे पर डाल लिया। फिर वह श्मशान की ओर बढ़ता चला गया। तब शव के अन्दर छिपे बेताल ने कहा,-"राजन! इस आधी रात के समय श्मशान में भूत-प्रेत, विषैले सर्प आदि स्वच्छन्द रूप से विचर रहे हैं। यह जानते हुए भी अपनी जान को क्यों खतरे में डाल रहे हो? आख़िर ऐसा कौन-सा लक्ष्य है, जिसे साधने के लिए ख़तरा ले रहे हो? क्या तुमने कभी सोचा है कि लक्ष्य साधने का मार्ग जो तुमने अपनाया है, वह सही है या नहीं, क्योंकि कभी-कभी ज्ञानी व्यक्ति भी इस भ्रम में रहते हैं कि वे जो करते हैं, ठीक करते हैं और उनके कार्यों से निश्चित रूप से उनका कल्याण होगा। अपनी इस भ्रांति के कारण वे गलत और अनुचित निर्णय लेते हैं। इससे उनका अहित होता है। इसलिए तुम्हें सावधान करने के लिए जयचन्द्र नाम के एक राजा की कथा सुनाता हूँ। इससे तुम्हारी थकावट भी दूर हो जायेगी। ध्यानपूर्वक सुनो।" इतना कह कर बेताल विक्रमार्क को राजा जयचन्द्र की कथा यों सुनाने लगा-

"महेन्द्रगिरि का राजा जयचन्द्र सभी शास्त्रों का ज्ञाता और कुशल शासक था। प्रजा उससे बहुत प्रसन्न थी।

"एक बार राजा वेश बदल कर अपने मंत्री धीरवर्मा के साथ नगर में घूम रहा था। एक घर से जोर-जोर से आवाज आ रही थी। वे दोनों घर के अन्दर चले गये।

"उस घर में गौरी नामक एक लड़की कई दिनों से बीमार थी। उसे तेज़ बुखार था। उस दिन त्योहार होने के कारण घर वालों ने उसे बुखार में ही जबरदस्ती नहला दिया। फलतः ज्वर और बढ़ गया। रोगी को देखने के लिए एक वैद्य को बुलाया गया था। वैद्य ज्वर बढ़ने का कारण जान कर घरवालों को बहुत डाँटा और भला-बुरा कहा।

"इस पर घर का बूढ़ा मालिक चीखता हुआ वैद्य से बोला,-'लड़की के भाग्य में जिन्दा रहना है तो रहेगी। यदि मरना लिखा है तो मर जाएगी। किन्तु परम्परा के अनुसार जो हमें करना चाहिए, वह हम अवश्य करेंगे।'

''वैद्य ने रोगी को चुपचाप दवा दी और कुछ देर के बाद कहा,-'भाग्यवश अब खतरा टल गया है।''

''बूढ़ा फिर बोला,-'खतरा टलने का कारण उसका भाग्य है, आपकी दवा नहीं।

"जयचन्द्र यह सब देखकर बहुत क्षुब्ध और दुखी हो गया। राजभवन लौट कर उसने मंत्री से कहा,-'मंत्रिवर! हमारी प्रजा में कितनी मूर्खता और घोर अंधविश्वास फैल गया है। इसके उन्मूलन के लिए हमें शीघ्र ही कोई उपाय करना होगा।

"मंत्री धीरवर्मा ने कुछ सोच कर कहा, आधुनिक शिक्षा के प्रचार से ही यह अज्ञान मिट सकता है। क्यों न हम इसके लिए कुछ कानून बना कर उन्हें अमल में लायें।'

"राजा जयचन्द्र ने मंत्री की सलाह पर अन्धविश्वास सम्बन्धी कुछ कानून बना कर उन्हें अमल में लाने का आदेश दे दिया। ये कानून देश के रीतिरिवाज़ों और परम्पराओं के विरुद्ध थे। इसलिए प्रजा ने इन्हें पसन्द नहीं किया। लोगों ने आरोप लगाया कि राजा हजारों वर्षों से आ रही परम्परा और परिपाटी को तोड़ना चाहते हैं। उन सब ने मिलकर विनायक नाम के व्यक्ति को अपना प्रतिनिधि चुना और विचार-विमर्श के लिए राजा के पास भेजा।

"विनायक ने राजा से कहा,-'प्रभु! पीढ़ी-दर-पीढ़ी आ रही परम्परा को आप नष्ट करना चाहते हैं, जो हमारे देश की संस्कृति है। इसका अर्थ यह हुआ कि आप देश की संस्कृति के विरुद्ध हैं। देश की संस्कृति को नष्ट करनेवाले नये कानूनों ने प्रजा में अशान्ति फैला दी है। यदि आपने तुरन्त इन्हें वापस नहीं लिया तो प्रजा विद्रोह कर देगी, और एक व्यक्ति भी आपका साथ नहीं देगा।'

"यद्यपि विनायक यह सब बड़े विनम्र भाव से कह रहा था, फिर भी उसके शब्दों में चेतावनी का स्वर था।

"राजा ने मन ही मन सोचा-एक साधारण प्रजा का इतना साहस कि मुझे विद्रोह की चेतावनी दे। उसके चेहरे पर क्रोध का भाव साफ झलक रहा था। उसके मन में विचार आया कि वह विनायक को बन्दी बना कर जेल में बन्द कर दे।

"मंत्री राजा के चेहरे के भाव से उसके विचार को ताड़ गये। इसलिए उसे शान्त रहने का संकेत देते हुए कहा, 'महाराज! मूर्ख और अन्धविश्वासी व्यक्ति के साथ हम सीधी टक्कर में नहीं जीत सकते। मरीचिका में भी जल पिया जा सकता है पर मूर्खता दूर नहीं की जा सकती। ब्रह्मा भी मूर्खों से हार मानते हैं। विनायक को अभी बन्दी बनाने का अर्थ हुआ कि प्रजा को हम स्वयं विद्रोह के लिए भड़का रहे हैं।'

'तो क्या जान-बूझ कर भी हम उन्हें मूर्खता और अज्ञान का जीवन जीने दें? अन्धविश्वास की बलिवेदी पर निर्दोष और मासूम बच्चों और स्त्रियों को मरने दें? चुपचाप यह सब देखते व सहते रहें?' राजा ने आक्रोश से कहा।

"धीरवर्मा सोच में पड़ गये। फिर विनायक को बुलवा कर कहा,-'देखो, अभी हम नये कानूनों को कुछ समय के लिए स्थगित कर देते हैं। तब तक तुम अच्छी तरह पढ़ो-लिखो और कुछ ज्ञान प्राप्त करो। उसके बाद भी यदि तुम्हें ऐसा लगे कि ये कानून प्रजा के हित में नहीं हैं तो उन्हें रद्द कर देंगे। क्या तुम इस प्रस्ताव से सहमत हो?'

"विनायक ने बात मान ली। वह पाँच वर्षों तक श्रद्धापूर्वक ज्ञान अर्जन करता रहा। शिक्षा पूरी होने के बाद वह राजा से मिला। राजा ने पूछा,-'कहो, अब तुम्हारे क्या विचार हैं?' विनायक ने कहा, 'महाराज! सचमुच मेरा विचार बदल गया है। अब हमारी सोच प्रजा की सोच से भिन्न है। पुरानी परम्पराएं केवल अन्धविश्वास के रूप में रह गई हैं।

जब तक प्रजा को इन सड़े-गले रीतिरिवाजों के दलदल में से निकाला नहीं जायेगा, देश की प्रगति असम्भव है।'

'बहुत अच्छी बात है अब कानूनों का प्रजा द्वारा पालन करवाना तुम्हारा कर्तव्य होगा। 'राजा ने उसे विश्वास में लेते हुए कहा।

किन्तु महाराज, इन कानूनों को प्रजा द्वारा अमल में लाने से मेरा क्या लाभ होगा?, विनायक ने पूछा।

'प्रति मास तुम्हें हजार अशर्फियाँ दी जायेंगी', राजा ने बताया, 'और राज कर्मचारी का पद भी।'

'प्रभु! मैं प्रजा का प्रतिनिधि हूँ। इसके लिए मुझे एक हजार अशर्फियाँ मिलेंगी। किन्तु आप भी तो प्रजा के प्रतिनिधि हैं। क्या मैं जान सकता हूँ कि आपको प्रति मास कितनी अशर्फियाँ मिलती हैं?' विनायक ने दृढ़तापूर्वक पूछा।

"राजा जयचन्द्र को क्रोध आ गया। उसने कड़े

स्वर में ही कहा, 'हमारे पुरखे कितने ही लम्बे अर्से से इस देश पर शासन करते आ रहे हैं। मुझसे तुम्हारी बराबरी का प्रश्न ही नहीं।'

''विनायक ने मुस्कुराते हुए कहा, 'आप तो राजवंश में पैदा होने के कारण राजा हैं। यानी एक मूढ़ परम्परा ने आपको राजा बनाया। किन्तु मुझे तो प्रजा ने अपना प्रतिनिधि बनाया है। पुरानी परम्परा के बहिष्कार के लिए ही आपने कानून बनाये। इसका अर्थ यह हुआ कि हमारे देश में राजा बनने की परम्परा का भी अन्त होना चाहिए।'

''विनायक का यह अकाट्य तर्क सुनकर राजा का चेहरा फीका पड़ गया। उसे समझ में नहीं आया कि क्या उत्तर दे। इसलिए फौरन उसने मंत्री धीरवर्मा को बुला भेजा।

''धीरवर्मा ने विनायक की सारी बातें सुनने के बाद उससे कहा,-'तुम्हारी बातें उचित लगती हैं परन्तु इसमें प्रजा की राय जानना आवश्यक है। यदि राय तुम्हारे अनुकूल हुई तो राजा वानप्रस्थ ले लेंगे और सिंहासन तुम्हें सौंप देंगे। लेकिन... एक शर्त है। शर्त यह है कि जब देश की सारी प्रजा शिक्षित हो जाये, तभी उनकी राय ली जाये।

'मेरे विचार से तो यह असंभव है। मैं तो राज कर्मचारी बनना ही पसन्द करूँगा।' इतना कह कर विनायक चला गया।

'विनायक के जाते ही राजा ने मंत्री से आश्चर्य और रोष में कहा, तुमने विनायक को ऐसा क्यों कहा कि मैं उसे सिंहासन सौंप दूँगा।'

'महाराज क्षमा करें। मेरी बात में एक बड़ा राजनीतिक रहस्य है। जब तक प्रजा अशिक्षित है, मूढ़ है, परम्परावादी है, पुराने रीतिरिवाजों में अन्ध-विश्वास रखती है, तब तक राजवंश के व्यक्ति को ही राजा मानेगी, किसी सामान्य व्यक्ति को नहीं, क्योंकि यह भी एक पुरानी परम्परा है। यह भी एक पुरानी प्रथा है। विनायक के कहने पर भी प्रजा उसकी बात नहीं मानेगी। इसीलिए मैंने जानबूझ कर उससे यह बात कही। और एक शर्त भी रखी जो कभी पूरी नहीं हो सकती। इसीलिए राज्य-परम्परा या आपके विरुद्ध जाने का प्रश्न ही नहीं उठता।' मंत्री ने अपने रहस्य भरे उत्तर को स्पष्ट करते हुए कहा।

''यद्यपि मंत्री की बातों से स्पष्ट था कि राजा के सिंहासन को प्रजा की ओर से कोई खतरा नहीं है फिर भी वे हतप्रभ से हो गये। और कुछ देर मौन-चिन्तित बैठे रहने के बाद गंभीर मुद्रा में उठ कर चले गये।''

बेताल ने यह कहानी सुनाने के बात प्रश्न किया, 'राजन! प्रजा ने विनायक को अपना प्रतिनिधि चुना। शिक्षित होने के बाद वह महत्वाकांक्षी हो गया और बुद्धि बल से उसने राज सिंहासन लेने का

प्रयास किया। किन्तु अन्त में राज-कर्मचारी ही बने रहने का निर्णय क्यों लिया?

दूसरा प्रश्न यह है कि जब मंत्री ने स्थिति को संभालने के लिए विनायक को राजा की ओर से राज सिंहासन सौंपने का आश्वासन दे दिया तो राजा उस पर नाराज हो गये, क्योंकि इससे हाथ से राज सिंहासन निकल जाने का भय था। इस पर मंत्री ने राजा को आश्वासन दिया कि जब तक प्रजा मूढ़, परम्परावादी और अन्धविश्वासी है, तब तक उनके राज्य को कोई खतरा नहीं है। इस पर राजा को प्रसन्न होना चाहिए था। परन्तु वे हतप्रभ हो गये और गंभीर होकर उठ कर चले गये। ऐसा क्यों? मेरे इन प्रश्नों के उत्तर जानते हुए भी यदि चुप रहोगे तो तुम्हारे सिर के टुकड़े-टुकड़े हो जायेंगे।'

विक्रमार्क ने बेताल के सन्देहों को दूर करने के उद्देश्य से कहा, 'कोई कितना भी शिक्षित क्यों न हो, पर स्वार्थ किसी को नहीं छोड़ता। बौद्धिक विकास होने से महत्वाकांक्षाएँ और बढ़ जाती हैं। यही कारण है कि विनायक पढ़ने-लिखने के बाद राज सिंहासन पर बैठने की आशा करने लगा। पर शर्त के अनुसार हर नागरिक के शिक्षित हो जाने पर राज्य भर में कितने ही विनायक होंगे और सभी राज सिंहासन का सपना देखेंगे! सबमें राजा बनने की होड़ लग जाएगी। इस होड़ में वह शामिल नहीं होना चाहता था, क्योंकि यह आवश्यक नहीं था कि होड़ में उसी को सफलता मिलेगी। इसीलिए उसने राज कर्मचारी ही बने रहने में अपनी भलाई समझी। स्वार्थ ही इसका मूल है।'

दूसरी शंका के समाधान में राजा विक्रमार्क ने बताया कि,-'राजा अपने राज्य से पुरानी प्रथाओं, परम्पराओं, अन्धविश्वासों को मूढ़ आचार समझ कर हटाना चाहता था। किन्तु जब उसे यह समझ में आया कि राजा की परम्परा भी एक मूढ़ आचार है, पुरानी प्रथा या परम्परा है तो वह गंभीर हो गया, क्योंकि परम्पराओं को हटाने से राज सिंहासन का अस्तित्व भी खतरे में पड़ जायेगा। इसलिए विवश होकर उसे अपनी प्रजा को यथापूर्व मूढ़ाचार में ही छोड़ देना पड़ेगा जो वह नहीं चाहता था। इसलिए दुखी हो कर वह वहाँ से चिन्तित मुद्रा में उठ कर चला गया।'

राजा के मौन को भंग करने में सफल होने पर बेताल शव सहित अदृश्य हो गया और पुनः पेड़ पर जा बैठा।

-कल्पित

(मूल रचनाः 'वसुंधरा')

कुदरत का खेल

इस साल बहुत ज्यादा बारिश होने के कारण हर तरफ पानी ही पानी जमा हो गया था। कुशस्तली नदी ने आस-पास के सभी गांवों को अपने आगोश में ले किया था। नायुडू की जमीन नदी किनारे थी और उसने बहुत मेहनत से फसल लगाई थी, वह पूरी तरह से डूब गई। बड़ी मुश्किल के बाद नायुडू अपने परिवार समेत जान बचाकर सुरक्षित जगह पर पहुंच सका।

यह बात जब नायुडू के मित्र रायुडू को मालूम हुई तो वह शहर से उसके पास आया और यों सांत्वना दी, 'नायुडू, ये सब कुदरत का खेल है। जब दौलत आती है तो वह नारियल के पानी की तरह आती है और जब जाती है तो हाथी के खाये बेल की तरह चली जाती है। तकदीर एक हाथ से देकर दूसरे हाथ से छीन लेती है। इसमें नई चीज क्या है?'

दो मिनट मौन रहने के बाद नायुडू ने कहा, 'तीस साल तक दिन रात मेहनत कर की हुई सारी कमाई एक रात में खो देना मुझे अच्छा नहीं लगा। तुम जिसकी बात कह रहे हो उस कुदरत ने मुझे थोड़ी-थोडी करके ही दी थी। अगर वह मुझसे थोड़ा-थोड़ा छीन लेता तो मुझे कुछ भी दुख नहीं होता। लेकिन उसने मेरा सब कुछ एक रात में ही छीन लिया। नहीं तो तुम्हें भी ऐसा कहने की जरूरत नहीं पड़ती, है न? यह सुनकर रायुडू खामोश रह गया।

-आर. सत्या

स्वर्ण सिंहासन

बहुत पहले एक समय ऐसा था जब दक्षिण भारत में चार बड़े और बलशाली राज्य थे-कौंडिन्य, कालिंदी, चम्पक और कुँद। इनके अतिरिक्त छः छोटे राज्य भी थे।

हैहय वंश का, कौंडिन्य का राजा पौरस्वत बड़ा ही पराक्रमी और कुशल शासक था। दक्षिण भारत के राज्यों में प्रायः कई कारणों से युद्ध चलता रहता था। पौरस्वत ने अपनी राजनीतिक कुशलता से उनमें सद्भाव और एकता स्थापित की। उसके नेतृत्व में समस्त दक्षिण भारत एक सूत्र में बँध गया। सभी राजाओं ने इन्हें अपना नेता और सम्राट स्वीकार कर लिया। चारों दिशाओं में इनकी कीर्ति फैल गई।

दुर्भाग्यवश इनके कोई संतान नहीं थी। इसलिए इनकी मृत्यु के पश्चात इनके भाई के पुत्र हयग्रीव ने राज्य-भार संभाला।

हयग्रीव स्वभाव से एक अच्छा व्यक्ति था किन्तु एक योग्य शासक के गुण उसमें नहीं थे। यह बात उसके दरबारियों, अधिकारियों और सामन्तों को नहीं मालूम थी। राज्य भर में केवल एक व्यक्ति ऐसा था जो राजा ह॰ ीव की सही योग्यता के विषय में जानता था। वह था-पुलिंद भट्टारक।

पुलिंद भट्टारक मंत्र शास्त्र के बहुत बड़े पंडित और कुशल राजनीतिज्ञ थे। काशी में अपनी शिक्षा पूरी करने के पश्चात सम्राट पौरस्वत के समय कौंडिन्य राज्य की शरण ॰ आये थे। इनके पांडित्य से प्रभावित होकर पौरस्वत न अपने दरबार में इन्हें समुचित सम्मान के साथ आश्रय दिया था।

पौरस्वत के मरणोपरान्त हयग्रीव ने उन्हें एक गुरु और पिता तुल्य सम्मान देकर राज्य में उनकी प्रतिष्ठा और बढ़ा दी। इतना ही नहीं, जब राजगुरु की मृत्यु हो गई तो हयग्रीव ने पुलिंद को कौंडिन्य राज्य का राजगुरु भी घोषित कर दिया।

गुरु-शिष्य दोनों एक दूसरे को बहुत प्यार करते थे। इसलिए राजगुरु पुलिंद को राजा हयग्रीव की असमर्थता पर बहुत दुख होता था। उसने राजा को एक योग्य और समर्थ शासक बनाने की भरसक कोशिश की। राजगुरु चाहते थे कि पौरस्वत के समान ही उसकी भी दूर-दूर तक कीर्ति फैले। अधीनस्थ सामन्त राजा इसकी उतनी ही प्रतिष्ठा करें। एक ओर वे राजा को योग्य बनाने के लिए उसे राजनीतिक ज्ञान सिखाते रहे और दूसरी ओर दरबारियों और सामन्तों से इसकी दुर्बलता छिपाते रहे ताकि वे उसका यथावत सम्मान करते रहें और राजा की कमजोरी का अनुचित लाभ न उठा पायें। लेकिन पुलिंद को सफलता नहीं मिली और हयग्रीव एक योग्य राजा और शासक कभी न बन सका।

एक दिन हयग्रीव कुछ सिपाहियों को लेकर निकटवर्ती बन में आखेट के लिए गया। उसने वहाँ एक बारहसिंगे को छलांग मारता हुआ जाते हुए देखा। हयग्रीव ने उस पर लक्ष्य साध कर बाण चला दिया। परन्तु उसका निशाना चूक गया और शिकार देखते-देखते आँखों से ओझल हो गया। हयग्रीव निराश और उदास हो गया। उसे अपनी दुर्बलता पर ग्लानि होने लगी। तभी उसके पीछे आते हुए सिपाहियों की व्यंग्य भरी हँसी सुनाई पड़ी। यह उसके हृदय में बाण की तरह चुभ गई। उसे लगा जैसे उनके सिपाही उसे कह रहे हों,-"तुम तो इतने दुर्बल और असमर्थ हो कि एक साधारण बारहसिंगे को भी मार न सके। इस विशाल राज्य का भार तब कैसे संभाल पाओगे? क्या तुम पौरस्वत जैसे वीर और पराक्रमी राजा के योग्य उत्तराधिकारी बनने लायक हो?" उसका हृदय घायल हिरन की तरह कराह उठा। उसने एक बार तो चाहा कि सिपाहियों के पास जाकर उनसे पूछे कि तुमने मुझ पर हँसने की हिम्मत कैसे की, और उन्हें दण्ड दे। किन्तु वह आत्म-ग्लानि और हीन-भावना से इतना पीड़ित था कि वह इतना साहस न बटोर सका। उसने अनुभव किया कि वह सचमुच एक अयोग्य राजा है और इसलिए उसे सिपाहियों से

कुछ पूछने का नैतिक अधिकार नहीं है।

वह चुपचाप नगर की ओर लौट पड़ा। राजा को बहुत गंभीर देख कर सिपाही घबरा गये थे। किसी ने उनसे कुछ प्रश्न करने का साहस नहीं किया। वे भी चुपचाप उनके पीछे-पीछे चल पड़े।

हयग्रीव कोमल और संवेदनशील स्वभाव का व्यक्ति था। इसलिए अपने सिपाहियों द्वारा किया गया यह अपमान उसे असहनीय लग रहा था। वह अब भी अपनी हीनता और दुर्बलता पर पश्चाताप कर रहा था। सोच रहा था कि जब ये साधारण सिपाही मेरी अयोग्यता पर हँसने का साहस कर सकते हैं तो हमारे दरबारी, बुद्धिजीवी नागरिक और सामन्त मेरे विषय में क्या सोचते होंगे। यह कल्पना करते ही उसके मन-प्राण सिहर उठे। ''राजा के रूप में तो क्या, साधारण नागरिक के रूप में भी मुझे जीने का अधिकार नहीं है। संसार में दुर्बल और असमर्थ के लिए कोई स्थान नहीं। धिक्कार है मेरा ऐसा जीना।'व ऐसे विचारों में खोया, दुखी-खिन्न और उदास, वह राजभवन पहुँचा।

दूसरे दिन राजगुरु पुलिंद को यह सन्देश मिला कि महाराजा हयग्रीव की प्रातःकाल आकस्मिक मृत्यु हो गई। वे स्तंभित रह गये। दौड़े-दौड़े अन्तःपुर आये। राजपरिवार के सभी सदस्य महाराज के शव के पास उनकी अकारण और अचानक मृत्यु से चकित और चिंतित बैठे थे।

जब राजगुरु पुलिंद मृत्यु के कारणों पर विचार करते-करते अपने निवास पर पहुंचे, तब एक सिपाही ने उन्हें डरते हुए एक सन्दूकची दी और कहा,-''आज सवेरे महाराज ने इसे आप के पास

भेजा है। उस समय आप मन्दिर में पूजा कर रहे थे। उसके बाद जल्दी में आप राजभवन चले गये। इसलिए दे नहीं पाया।''

उस सन्दूकची में महाराज का लिखा हुआ एक पत्र था। पत्र से पता चल गया कि महाराज ने आत्म हत्या की है। मृत्यु का कारण आत्महत्या जान कर वे और भी दुखविह्वल और विचलित हो गये।

हयग्रीव के दाह-संस्कार के पश्चात उसके तीन वर्षीय पुत्र का राज्याभिषेक कर दिया गया। शासन का कार्य उसकी ओर से राजगुरु पुलिंद स्वयं करने लगे।

हयग्रीव के शासन-काल में ही राज्य में यत्र-तत्र विद्रोह होने लगे थे। जिन राज्यों ने महाराज

पौरस्वत के पराक्रम को देख कर उन्हें सहर्ष अपना सम्राट स्वीकार किया था, वे ही अब कौंडिन्य राज्य से अलग रहना चाहते थे। धीरे-धीरे ये विद्रोह बढ़ते गये। हयग्रीव के पुत्र के बालिग होते-होते अन्त में सभी राज्यों ने अपने को स्वतंत्र घोषित कर दिया। छः छोटे राज्य भी अलग हो गये। हैहय वंशजों के अधिकार में पुनः केवल कौंडिन्य राज्य बच गया।

उस समय कौंडिन्य में हैहय वंश का पाँचवां राजा श्रीदत्त राज्य कर रहा था। वह स्वभाव का कोमल होते हुए भी एक समर्थ और कुशल शासक था। उसका एक पुत्र था जिसके जन्म के समय ही रानी का देहान्त हो गया। उसे अपनी रानी से बेहद प्यार था। उसकी मृत्यु से उसके हृदय को गहरी चोट लगी। यद्यपि उस समय वह युवा था, फिर भी उसने दूसरा विवाह नहीं किया और रानी के प्रति सच्चा बना रहा। अपने पुत्र का पालन-पोषण उसने बड़े प्यार से किया और थोड़ा बड़ा होते ही उसे दक्षिण भारत के श्रेष्ठ और प्रख्यात गुरु कृष्णचन्द्र के आश्रम में भेज दिया।

वह बालक युवराज विजयदत्त के रूप में शस्त्र और शास्त्र-दोनों विद्याओं में दूज के चाँद के समान विकसित होने लगा। वह मेधा और कौशल में अद्वितीय होने के कारण अपने गुरु का सर्व प्रिय शिष्य था। शस्त्र और शास्त्र विद्याओं के अभ्यास के बाद गुरु ने उसे राजनीति की भी शिक्षा दी तथा शासन प्रणाली और राजा के कर्तव्य के विषय में ज्ञान दिया। उसे अपने देश और राज्य के इतिहास के विषय में यह भी बताया गया कि कैसे उसके पूर्वज पौरस्वत ने अपने पराक्रम और बुद्धि से अपने छोटे राज्य को एक विशाल साम्राज्य में बदल दिया। परन्तु उसी के दुर्बल और असमर्थ उत्तराधिकारियों के कारण वह साम्राज्य पुनः खण्ड-खण्ड हो गया। यह सब जानने के बाद वह प्रायः गंभीर होकर चिन्तन में डूब जाता और सोचता कि कैसे उन राज्यों को फिर से एक अखण्ड साम्राज्य के सूत्र में बाँध दूँ।

अभी युवराज विजयदत्त की शिक्षा का अन्तिम चरण समाप्त होने ही वाला था कि राजा श्रीदत्त ने विजयदत्त को शीघ्र वापस भेज देने के लिए अपने सिपाही द्वारा कृष्णचन्द्र को सन्देश भेजा। यद्यपि पिता के आकस्मिक बुलावे पर विजयदत्त चकित था, फिर भी वह गुरु का आदेश पाकर शीघ्र ही

घोड़े पर सवार हो राजधानी की ओर चल पड़ा।

पुत्र के आगमन का समाचार पाकर महाराज ने राजभवन के प्रवेश द्वार पर ही उसका स्वागत किया। पिता की गंभीर और चिन्तित मुद्रा से उसे लगा कि राज्य में कोई अवश्य विकट समस्या उत्पन्न हो गई है।

भोजन के पश्चात जब पिता और पुत्र एकान्त में बैठे थे, तब विजयदत्त ने पूछा,-"पिताश्री, क्या मैं जान सकता हूँ कि मुझे अकस्मात क्यों बुलाया गया है?"

श्रीदत्त कुछ क्षण मौन रह कर बोले,-"पुत्र! तुम्हें मालूम हो गया होगा कि हमारे पूर्वज पौरस्वत महाराज सम्पूर्ण दक्षिण के सम्राट थे और सभी छोटे-बड़े सामन्त राज्य इनके अधीन थे। उनके शासनकाल में उन्हें सामन्त राजाओं ने कितनी ही अमूल्य निधियाँ, निक्षेप व नायाब वस्तुएं उपहार में दी थीं। उनमें सोना, चाँदी के साथ-साथ उत्तम कोटि के रत्नों के भण्डार भी हैं। इन सब की जानकारी उन राजाओं को है। महाराज पौरस्वत के बाद उन सामन्त राजाओं ने यद्यपि अपनी स्वतंत्रता घोषित कर दी है, फिर भी, किसी ने अभी तक हम पर नज़र उठाने का साहस नहीं किया। इसलिए वे सारी निधियाँ अब तक सुरक्षित हैं। परन्तु...."

इतना कह कर श्रीदत्त एक गंभीर मौन में डूब गये। "परन्तु क्या पिताश्री?" घबराहट के साथ विजयदत्त ने पूछा। "परन्तु, आज उन पर किसी की गिद्ध-दृष्टि पड़ गई है।" पिता ने कहा। "कौन है वह व्यक्ति जिसने यह साहस किया है, पिताश्री?" संयत स्वर में तनिक रोष के साथ विजयदत्त बोला।

दीर्घ श्वास लेते हुए श्रीदत्त ने कहा,-"षड़यंत्रकारी एक नहीं, तीन हैं। दक्षिणापथ के सभी राजा एकजुट होकर हमारे विरुद्ध षड़यंत्र रच रहे हैं।" "सभी...!" चौंकते हुए विजयदत्त ने

पूछा।-"क्या कालिंदी का राजा भी इस षड़यंत्र में शामिल है?"

"हाँ! वह भी।"

वियजदत्त को जैसे धक्का-सा लगा। मानो किसी ने विश्वासघात किया हो। अब उसने समझा कि राज्य की समस्या कितनी गंभीर है और पिताश्री इतने चिंतित क्यों हैं।

श्रीदत्त अब तक के सभी घटना-चक्रों का ब्योरा देते हुए बोला,-"जब सभी राजा कौंडिन्य राज्य से अलग होकर स्वतंत्र हो गये, तब भी हमारे किसी राजा में उनके प्रति कोई दुर्भावना नहीं थी। मेरे पिता ने मेरी बहन इंदुमती के विवाह के लिए स्वयंवर की घोषणा की थी। देश-विदेश में निमंत्रण भेजे गये थे। पर इंदुमती ने कालिंदी राज्य के युवराज माधवसेन के ही गले में वरमाला डाली थी। बहुत धूम-धाम से यह विवाह सम्पन्न होने के बाद इंदुमती को कालिंदी राज्य की बहू बनाकर भेजा गया था। परन्तु कुछ ही दिनों के बाद एक दुर्घटना में उसकी मृत्यु हो गई थी। उसकी मृत्यु के पश्चात् माधवसेन ने एक अन्य राजकुमारी बसुमती से विवाह कर लिया। यह विवाह मेरे प्रयास के कारण हुआ था। इसलिए बसुमती मुझे सगे भाई के समान मानती थी।

"अभी हाल तक हम दोनों के सम्बन्ध मैत्रीपूर्ण थे। राजा माधवसेन कौंडिन्य राज्य में प्रायः आया करता था। बसुमती की हार्दिक इच्छा थी कि उसकी एकलौती पुत्री श्रीलेखा का विवाह तुमसे हो और इस बार कालिंदी की राजकुमारी कौंडिन्य की रानी बन कर आये। मैंने भी अपनी सहमति दे दी थी। माधवसेन ने कभी इस पर आपत्ति नहीं व्यक्त की। पर आज यह हमारे विरोधियों में से एक है।"

इतना कह कर गहरी सांस लेते हुए श्रीदत्त चुप हो गया। विजयदत्त आश्चर्य करता हुआ सोच रहा था कि क्या ऐसा भी हो सकता है। माधवसेन के लिए पिताश्री ने कितना किया। उसके बदले यह उपकार? यह विश्वासघात है।

विजयदत्त को मौन देख कर महाराज ने उसकी पीठ थपथपाते हुए कहा,-"पुत्र! मुझे भी पहले विश्वास नहीं हुआ था। इसलिए इसकी सच्चाई का पता लगाने का काम मैंने सेनाध्यक्ष वीरबाहु को सौंप दिया। उसने गुप्तचरों द्वारा पता लगा कर दस दिन पहले विस्तृत लिखित प्रतिवेदन मेरे सम्मुख

प्रस्तुत किया। उसे पढ़ कर मैं सचमुच अवाक् रह गया।''

विजयदत्त पिताश्री की बातें बड़े मनोयोग से सुन रहा था मानों इन सारी समस्याओं के चक्रव्यूह को उसे ही भेदना है। पिता ने पुनः कहना शुरू किया-

''इस प्रतिवेदन के द्वारा जो अन्य मुख्य बातें प्रकाश में आई हैं उन्हें भी ध्यान से सुनो। ये सब एक ही समस्या के ताने-बाने हैं।

''दक्षिणापथ के चार बड़े राज्यों में एक चम्पक भी है। उसका वर्तमान राजा मरालभूपति है। उसके पिता चक्रभूपति ने अपने अग्रज को विष देकर मार डाला था और वह स्वयं राजा बन गया था। मरालभूपति भी अपने पिता के समान ही कुटिल और दुष्ट है। इसके दो बेटे हैं। राज्य का उत्तराधिकारी बड़ा बेटा चक्रभूपति न केवल नाम में बल्कि शरीर की बनावट और दुष्टता में भी अपने दादा का ही दूसरा रूप है। ये बाप-बेटे सिर्फ दुष्टता में ही नहीं, युद्ध विद्या में भी कुशल हैं। ये अपनी दुष्ट शक्तियों और कुयुक्तियों पर स्वयं गर्व करते हैं। इन दोनों शैतानी शक्तियों की कुदृष्टि हमारी अमूल्य सम्पदा पर ही नहीं, बल्कि दक्षिणापथ के सार्वभौमित्व पर भी है।

''चन्दन राज्य की बायीं तरफ पूर्व दिशा में कुँद राज्य है और दायीं तरफ पश्चिम दिशा में कालिंदी। चन्दन राज्य का राजा है वृषभध्वज। वह वृद्ध और असमर्थ है और निः संतान भी। दुर्भाग्यवश उसका कोई निकट सम्बन्धी भी नहीं है जो सिंहासन के वारिस होने का हकदार हो। इन्हीं कारणों से वह

मरालभूपति के चंगुल में आसानी से फँस गया। उसने पहले ही कह दिया था कि इस वृद्धावस्था में कहीं आ-जा नहीं सकूँगा। किन्तु जो सेना तथा रसद चाहिये, भेजता रहूँगा। यदि ये बाप-बेटे थोड़ी सी भी सेना लेकर हमला करते तो उसे जीत लेते। परन्तु उन्होंने ऐसा नहीं किया, क्योंकि पहले वे कौंडिन्य राज्य को हड़पना चाहते हैं। जब तक उनकी यह योजना सफल नहीं हो जाती तब तक वे किसी अन्य राज्य के साथ युद्ध छेड़ना नहीं चाहते, क्योंकि इससे हमारा ध्यान उधर जायेगा और हम सावधान हो जायेंगे।

''कुँद के राजा से उन्होंने सन्धि कर ली है।

''अब उसकी दृष्टि कालिंदी पर है, जो हमारे

और उसके राज्य के मध्य स्थित है। हमारे और कालिंदी राज्य के बीच सम्बन्ध होने के कारण वह सावधानी से कदम रख रहा है। इसके अतिरिक्त, उसके पुत्र ने जब से कालिंदी की राजकुमारी के अपूर्व सौन्दर्य की चर्चा सुनी है, वह उससे विवाह करने को लालायित है।

इतना कह कर पिता फिर रुक गये। विजयदत्त पिता द्वारा कथित राजनीतिक घटनाओं के विवरण को ध्यान से सुन रहा था। पिता के अचानक रुक जाने से वह शंकित हो उठा। इस पर पिता ने एक दार्शनिक की तरह मुस्कुराते हुए कहा, -"बड़े बुजुर्गों का कहना है कि एक राजा का जीवन काँटों के बीच खिलते हुए गुलाब की तरह है।"

पिता की बातें सुनते-सुनते वह कई प्रकार की शंकाओं के घेरे में फँसता जा रहा था। उसे मालूम था कि कौंडिन्य और कालिंदी दोनों परिवारों की चाह थी कि उसका परिणय श्रीलेखा से ही हो। इसलिए बचपन से ही दोनों एक दूसरे को चाहने लगे थे। किन्तु वर्तमान राजनीतिक दाव-पेंच शतरंज का खेल हो गया है और उसका प्रेम उस खेल में मोहरा बन गया है। लगता है, वह इस राजनीतिक शतरंज के खेल में अपने मोहरे की रक्षा करने में असमर्थ है। इतने सारे शत्रुओं को मारने के बाद भी क्या वह श्रीलेखा को पाने में सफल हो सकेगा? क्या वह तब तक अविवाहित रहेगी? चंपक के राजकुमार के साथ उसका गुप्त रूप से विवाह हो भी गया, हो तब भी कोई आश्चर्य की बात नहीं।

बहुत देर तक विजयदत्त इस प्रकार के विचारों में खोया रहा। पिता भी मौन थे और ध्यान से अपने पुत्र के चेहरे पर बनती-मिटती भाव-भंगिमाओं को पढ़ कर उसके मानसिक उथल-पुथल को जानने की कोशिश कर रहे थे।

तभी विचारों का तारतम्य टूटते ही अभी-अभी होश में आये व्यक्ति की तरह चौंकते हुए कहा, -"आगे कहिए, पिताश्री!"

(सशेष)

१८५७ की वीर गाथा

प्रथम स्वतंत्रता-संग्राम

अब तक: पूरे देश में यत्र-तत्र क्रान्ति की आग धधक रही थी। क्रान्ति के दो महान युवा नायक थे-झाँसी की रानी और नाना साहेब। ब्रिटिश सरकार ने राजा की मृत्यु के बाद बिना कारण झाँसी का राज्य हड़प लेने का प्रयास किया था। किन्तु रानी ने ऐसा होने नहीं दिया। उसने बहादुरी के साथ आक्रमणकारी ब्रिटिश सेना का सामना किया। किन्तु जब किले को बचाना संभव न रहा तो वह अपने दत्तक पुत्र को पीठ पर बांध, पुरुष वेश में घोड़े पर सवार हो, अंग्रेजों की सेना से बचती हुई, किले के मुख्य द्वार से बाहर निकल गईं।

रानी अपनी दो विश्वासपात्र परिचारिकाओं- मन्दर और काशी के साथ आगे बढ़ती गईं। छोटी परन्तु बहादुर सेना की एक टुकड़ी उनका पीछा कर रही थी। रानी को बार-बार पीछे मुड़कर पीछा करनेवालों का सामना करना पड़ता था।

वह निरन्तर, पूरे दिन, विश्राम किये बिना घोड़े पर सवार आगे बढ़ती रहीं। उनका पहला गन्तव्य कालपी था। झाँसी से पिछली रात चल कर कहीं आधी रात को कालपी पहुँचीं।

नाना साहेब के चचेरे भाई और सच्चे देश भक्त राव साहेब के महल के सामने मशाल लेकर सन्तरी पहरा दे रहे थे।

"रानी! झाँसी की रानी यहाँ!" सन्तरी आपस में फुसफुसा रहे थे।

राव साहेब ने बाहर आकर रानी का स्वागत किया। जैसे ही रानी घोड़े से उतरीं, महल की स्त्रियों ने उनके सोते हुए पुत्र को संभाला। पुरुषों ने उनके घोड़े की लगाम ले ली।

आह! लगता है घोड़े ने पूरी निष्ठा से अपने स्वामी के प्रति अपना कर्तव्य पूरा कर दिया था। वह अचानक वहीं धम्म से गिर पड़ा और कुछ ही क्षणों में उसके प्राण-पखेरू उड़ गये।

रानी ने घुटनों के बल बैठ उसे प्यार से थपथपाया। उनकी आँखों से आँसू टपक पड़े, मानो

वे अपने मूक सेवक के प्रति श्रद्धांजलि अर्पित कर रही हों।

परन्तु रानी के पास विश्राम के लिए समय कहाँ था? सुबह होते ही वह राव साहेब के साथ रणनीति निश्चय करने के लिए बैठ गईं। रानी के गुप्तचरों ने समय से पूर्व यह सूचना दी कि झाँसी में सारा दिन लूट-मार और कत्लेआम करने के बाद भारत में ब्रिटिश राज के कर्णधार सर ह्यूग रोज़ के नेतृत्व में आधी सेना इसी ओर बढ़ी आ रही है।

रानी, राव साहेब तथा एक अन्य महान क्रान्ति नायक तात्या टोपे ने उस क्षेत्र के तीन-चार राजाओं-सामन्तों के सैनिकों को, जो इनकी सेवा में तैनात थे, एकत्र किया। तात्या टोपे के नेतृत्व में ये सैनिक इसी ओर आती हुई अंग्रेजी सेना की दिशा में बढ़ने लगे। कुंद गाँव में दोनों सेनाएं टकरा गईं।

दोनों सेनाओं में घमासान युद्ध हुआ। दुर्भाग्यवश तात्या टोपे को अपने सैनिकों को एक अनुशासन में संगठित करने का पर्याप्त समय नहीं मिला था। इसलिए कुछ घण्टों के युद्ध के पश्चात इन्हें पीछे लौटना पड़ा। अंग्रेजी सेना ने कालपी में प्रवेश कर नगर को खूब लूटा। अपने कारखाने में बनी हुई बन्दूकों तथा बारूद के विशाल भण्डार से भरा राव साहब का शस्त्रागार सर ह्यूग रोज़ के लिए एक बड़ा तोहफा साबित हुआ।

अंग्रेजों ने इस विजय पर खूब खुशियाँ मनाईं। किन्तु, रानी लक्ष्मीबाई, राव साहेब तथा तात्या टोपे में से किसी को भी बन्दी बनाने में विफल हो जाने के कारण वे निराश हो गये। ये तीनों नेता अपनी सेना का पुनर्गठन कर ग्वालियर पहुँच गये। ग्वालियर के राजा सिंधिया अंग्रेजों के समर्थक थे। लेकिन कुलीन और जन साधारण वर्ग के मन में क्रान्तिकारियों के लिए आदर-भाव था।

जैसे ही क्रान्तिकारी ग्वालियर पहुँचे, राजा सिंधिया शहर छोड़कर भाग गया। रानी तथा इनके सहयोगियों का भव्य स्वागत किया गया। ह्यूग रोज़ ने इसे अपना घोर अपमान समझा। वह जानता था कि यदि सिंधिया को ग्वालियर वापस नहीं मिला तो अन्य राजा ईस्ट इण्डिया कम्पनी की, उनकी रक्षा करने की, शक्ति में विश्वास खो देंगे। भाग्य से झाँसी अब पूरी तरह अंग्रेजों के नियंत्रण में था। अंग्रेजी सेना का वहाँ रहना आवश्यक नहीं था। ह्यूग रोज़ ने वहाँ से सैनिकों को बुला लिया और एक बड़ी सेना संगठित कर ग्वालियर चल पड़ा। उसने सिंधिया को अपनी सेना का अगुआ बना दिया। यह चाल उसके

लिए वरदान सिद्ध हुई। ग्वालियर की प्रजा ने क्रान्तिकारियों का स्वागत-सम्मान किया था। वे चाहते थे कि अंग्रेज हमारा देश छोड़ कर वापस चले जाएं। फिर भी अपने परंपरागत शासक के प्रति उनमें स्वाभाविक सहानुभूति थी। जब उन्होंने देखा कि अंग्रेजों से लड़ने का अर्थ है अपने राजा से लड़ना, तो वे निष्पक्ष हो गये। रानी ने बहुत बहादुरी और दृढ़ निश्चय के साथ अंग्रेजी सेना का मुकाबला किया। वह युद्ध में सदा अपनी सेना के आगे रहा करती थीं। दुर्भाग्यवश उनका विश्वासी घोड़ा पहले ही मर चुका था। जिस नये घोड़े पर वह सवार थीं, वह इनके युद्धाभ्यास की गतियों और युक्तियों से परिचित नहीं था, जबकि शत्रु बेरहम था। सर ह्यूग रोज़ एक कुशल और अनुभवी सेनापति था। अंग्रेज कप्तान इसके अधीन कई युद्ध लड़ चुके थे। फिर भी, रानी ने, जो सिर्फ २० वर्ष की थीं, उन्हें काफी समय तक घमासान युद्ध में उलझाये रखा। इनकी एक मात्र पूंजी थी-अदम्य साहस, दृढ़ संकल्प और राष्ट्रभक्ति।

इनके सैनिक समर्पित अवश्य थे किन्तु अधिकांश प्रशिक्षित नहीं थे। इसलिए वे पेशेवर अंग्रेजी सैनिकों के चालबाजी भरे आक्रमण का सामना नहीं कर सके। यदि ग्वालियर इनका साथ देता तो स्थिति भिन्न हो जाती।

दोपहर के काफी बाद रानी के सेनाधिकारियों ने वापस लौट जाने की सलाह देते हुए कहा,-''इस समय युद्ध में प्राण देने का औचित्य नहीं है। यदि आप जीवित रहीं तो आप के झण्डे के नीचे

हमलोग फिर से संगठित हो सकते हैं।''

रानी उनके सुझाव का आदर करती हुई मन्दर, काशी और मुट्ठी भर सैनिकों के साथ युद्ध क्षेत्र छोड़ कर पीछे लौट पड़ीं। वह घोड़े पर सवार बहुत तेज रफ्तार में जा रही थीं। शत्रु सेना भूखे भेड़िये की तरह उनका पीछा कर रही थी। उन्हें मालूम था कि यदि रानी को जीवित या मृत पकड़ लिया तो मालिकों से उन्हें ज़िन्दगी का सबसे बड़ा इनाम दिया जायेगा।

रानी ने एक चौरास्ते पर आकर एक तंग गली में घोड़े को मोड़ दिया। पीछा करनेवालों को पता न चला कि वह किस दिशा में गई है। इसलिए वे टुकड़ियों में बँट कर चारों ओर फैल गये। रानी के अंगरक्षक अचानक रुक गये और पीछा करने वाले अंग्रेज सैनिकों को मार गिराया।

रानी कुछ दूरी तर सुरक्षित भागती रहीं। शत्रु

की दूसरी टुकड़ी के सिपाही उनका पीछा करते देखे गये। मार्ग में एक तंग नदी आ गई। रानी अपने पुराने घोड़े पर इससे अधिक चौड़े नाले को छलांग लगा कर पार कर जाती थीं। किन्तु नया घोड़ा उतना योग्य नहीं था। वह रुक गया और घबरा कर नदी के किनारे दुलकी चलने लगा।

तभी शत्रु के सिपाही निकट आ गये और रानी के सैनिकों पर टूट पड़े। मन्दर घायल हो गई। रानी नदी किनारे एक ऐसे बिन्दु पर पहुँच गई थीं जहाँ पानी छिछला था और उसे आसानी से पार कर सकती थीं। लेकिन मन्दर की चीख ने उन्हें वापस लौटने पर बाध्य कर दिया। उन्होंने तलवार के एक ही वार में उसके आक्रमणकारी का काम तमाम कर दिया। फिर घोड़े से उतर कर घायल मन्दर को संभाला। तभी एक कायर ने उनके सिर पर तलवार चला दी। रानी के अंगरक्षकों ने तुरन्त उसका सिर धड़ से अलग कर दिया। फिर रक्त से लथपथ रानी को एक निकटवर्ती कुटिया में ले आये।

''मेरे बहादुरों!'' मरणासन्न रानी धीमी आवाज में बोलीं, ''मेरे प्राण निकलते ही मेरा दाह-संस्कार कर देना। शत्रु आने ही वाले हैं। मैं चाहती हूँ कि मेरे शरीर को स्पर्श कर वे इसे अपवित्र न करें।''

सचमुच अगले ही क्षण उन्होंने अपना शरीर छोड़ दिया। उनके विश्वासी सेवकों ने सूखी पत्तियाँ और लकड़ियाँ एकत्र कर उनका अन्तिम संस्कार कर दिया।

इस प्रकार भारतीय इतिहास का एक चमकता सितारा सदा के लिए अस्त हो गया। इतिहास में इनके समकक्ष एक मात्र व्यक्तित्व था-जोन ऑफ आर्क।

जवाहर लाल कहते हैं-''एक नाम दूसरों से अलग थलग लोक-स्मृति में जो आज भी ताजा है, वह है झाँसी की रानी लक्ष्मीबाई, बीस वर्ष की एक बाला जो देश के लिए लड़ते-लड़ते जान पर

खेल गई। विरोधी अंग्रेज सेनापति ने जिसके लिए कहा था,-"सर्वोत्तम और श्रेष्ठतम वीरांगना।"

यह क्रान्ति शीघ्र ही समाप्त हो गई, क्योंकि क्रान्ति के नायक एक-एक कर या तो बहादुरी से युद्ध करते हुए मारे गये या फाँसी के तख्ते पर झूल गये।

शूरवीरता, साहस, दूरदर्शिता और नेतृत्व-भारत में इन गुणों का कभी अभाव नहीं रहा। जिस गुण का यहाँ अभाव था, वह था-तात्कालिक राजाओं में एकता। उनमें एक दूसरे को नीचा दिखाने की एक जबरदस्त होड़ थी। उनमें कुछेक तो अपने ही देश के दुश्मनों और प्रतिद्वन्द्वी राजाओं से लड़ने के लिए विदेशी शक्तियों से भी मदद लेने में शर्म नहीं करते थे। इसके अतिरिक्त, अंग्रेजी सेना अधिक श्रेष्ठ थी और उसमें पेशेवर सैनिक थे, जबकि भारतीय सेना में स्वाधीनता के भाव से प्रेरित सामान्य जन थे जो युद्ध कौशल में प्रशिक्षित नहीं थे।

क्रान्ति समाप्त होते ही ईस्ट इण्डिया कम्पनी के कप्तानों और सैनिकों ने भारतीयों पर निर्मम अत्याचार किये। हजारों निर्दोष व्यक्तियों को मौत के घाट उतार दिया गया और सैकड़ों गाँव जला कर राख कर दिये गये। महलों और किलाओं को बर्बरता से लूटा गया। अन्तिम मुग़ल बादशाह बहादुर शाह जफ़र को, जिन्होंने क्रान्तिकारियों को समर्थन दिया था, बन्दी बना कर रंगून निर्वासित कर दिया गया, जहाँ वृद्धावस्था और मायूसी में उन्होंने दम तोड़ दिया।

जो भी हो, ब्रिटेन की जनता और नेताओं ने ईस्ट इण्डिया कम्पनी की, इसके अनाचारों, नीचताओं और दुर्व्यवस्थाओं के लिए, खूब खबर ली। भारतीय प्रशासन की जाँच कराई गई। महारानी विक्टोरिया ने राजक्षमा की घोषणा की और भारतीय राजाओं के तात्कालिक अधिकारों को स्वीकार कर लिया।
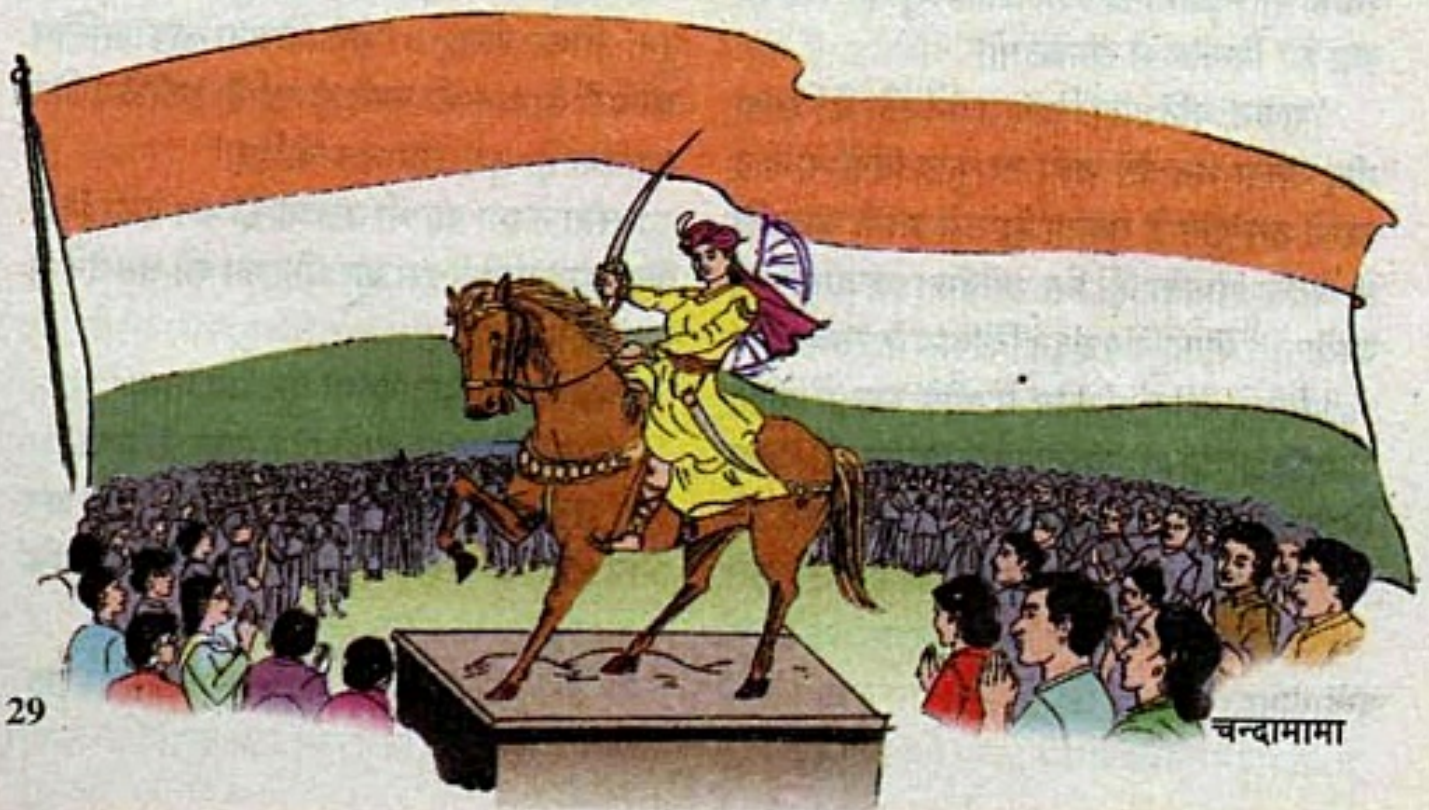
धन के लिए धन की सहायता

एक राजा के महल के सामने एक बैरागी आकर हर रोज़ खड़ा हो जाता और कहता,-"मुझमें असीम बुद्धि-बल है। किन्तु कोई ऐसा व्यक्ति नहीं मिलता जो इसे उपयोग में ला सके। मैं स्वयं किसी कारणवश इसका उपयोग करने में असमर्थ हूँ।"

यह बात राजा तक पहुंची। एक दिन राजा ने बैरागी को महल में बुला कर कहा, "तुम हर रोज़ एक ही बात दुहराते रहते हो। आखिर तुम्हारा तात्पर्य क्या है? विस्तार से समझाओ।"

"राजन, यदि आप विश्वास करें और मैं जितना माँगू उतना धन देते जायें तो कुछ दिनों के बाद उससे दस गुना दे सकता हूँ। उसे इतनी धनराशि में बदल सकता हूँ कि आपका खजाना भर जायेगा।" बैरागी ने बड़े दृढ़ विश्वास के साथ कहा।

मंत्री ने राजा के कान में धीमे स्वर में कहा, "महाराज! इसमें धोखा जान पड़ता है। आप विश्वास न करें।" राजा ने मन ही मन बैरागी को धन देने का निश्चय कर लिया था इसलिए उसे मुँहमाँगा धन देकर विदा कर दिया।

एक वर्ष के बाद बैरागी पुनः आ गया और राजा से बोला-"याद है न महाराज! पिछले वर्ष आपने मेरी आवश्यकता भर धन देने का वचन दिया था। मुझे अपनी योजना को कार्यान्वित करने के लिए और धन चाहिए।"

मंत्री के मना करने पर भी, राजा ने बैरागी को, जितना उसने माँगा, धन दे दिया। एक वर्ष के बाद पुनः आकर बोला, -"मेरी योजना अब अन्तिम चरण में है। धन की कमी हो गई है, इसीलिए फिर आ गया हूँ। मुझे और धन चाहिए।"

राजा ने इस बार भी उसे काफी धन देकर विदा कर दिया। मंत्री ने इस बार भी राजा को धन देने से मना किया।

एक वर्ष के बाद बैरागी पुनः आ गया।

"क्या और धन चाहिए?" राजा ने पूछा।

"नहीं महाराज! मेरी योजना पूरी हो गई। अब आप मंत्री को लेकर मेरे साथ चलें और देखें कि

मेरी बुद्धि ने आपके धन की सहायता से कितना बड़ा खजाना खोज निकाला है।''

राजा बैरागी के साथ चलने के लिए तुरन्त तैयार हो गये। लेकिन मंत्री ने कहा,-''यह तो केवल हम दोनों को ही अपने साथ बुला रहा है। मालूम नहीं, यह हमें कहाँ ले जायेगा? उस पर विश्वास करके यों बिना विचारे उसके साथ सिर्फ़ हम दोनों का जाना सुरक्षित नहीं है।''

''मैंने उसकी बुद्धि का चमत्कार देखने का निर्णय कर लिया है। मैं कितनी आशा, सहनशक्ति और धैर्य के साथ उसके साथ व्यवहार कर रहा हूँ। यदि उससे डरता तो क्या इतना सारा धन मैं उसे दे देता।'' राजा ने मंत्री को फटकारते हुए कहा।

मंत्री शुरू से ही बैरागी पर सन्देह कर रहा था। बैरागी इस बात को ताड़ गया था। इसलिए उसने मंत्री से कहा,-''मंत्री जी! यदि आप को किसी अशुभ की आशंका हो तो अंगरक्षकों को साथ ले चलिए।''

पर राजा ने साफ मना कर दिया, -''नहीं, सिर्फ हम दोनों ही चलेंगे आपके साथ।''

दोनों बैरागी के साथ चल पड़े। मंत्री ने फिर भी, गुप्त रूप से दो अंगरक्षकों को साथ ले लिया।

बैरागी राजा और मंत्री के साथ नगर, नदी, बन और पर्वत पार करके समुद्र तट पर आया। वहाँ एक छोटी-सी नाव थी। उसमें तीनों बैठ गये। मल्लाह के अतिरिक्त और किसी के लिए जगह नहीं थी। नाव एक द्वीप पर रुक गई। वहाँ चारों ओर एड़ी तक राख फैली थी व बगुले चक्कर काट रहे थे। राख के बीच एक पगडंडी थी जिसपर वे चलने लगे।

''लगता है, यह जादू-टोना का टापू है। हमें आखिर कहाँ ले जा रहे हो बैरागी?'' मंत्री ने भयभीत होकर अपनी तलवार निकालते हुए कहा।

''डरने की कोई बात नहीं। यह जादू-टोना का देश नहीं है। यह अपार धन-दौलत का एक छोटा-सा द्वीप है। ज्यादा लोगों के आने से बगुले घबरा जाते हैं, इसलिए मैंने आपके अंगरक्षकों को तट पर ही रोक दिया है।'' बैरागी ने मंत्री से कहा।

बैरागी चलते-चलते एक स्थान पर रुक गया। वहाँ लोहे का एक दरवाजा था। बैरागी ने दरवाजा खोल कर राजा को अन्दर जाने को कहा। अन्दर जाते ही नीचे जाने की सीढ़ियाँ बनी थीं। राजा निर्भय होकर अकेला ही अन्दर चला गया। वहाँ तहखाने में मोतियों का विशाल भण्डार था। राजा यह देख कर चकित रह गया। वह विस्फारित नेत्रों से घूम-घूम कर बहुमूल्य मोतियों के ढेर के ढेर काफी देर तक देखता रहा। जब वह बहुत देर तक ऊपर नहीं गया तो मंत्री को फिर शंका हो गई। मंत्री ने बैरागी को पकड़ लिया और तलवार खींच

ली। तभी राजा आ गया और मंत्री से बोला,- "जाओ, तुम भी देख लो।" जब वह नीचे गया तो वह भी चमत्कृत रह गया। उसने अनुभव किया कि बैरागी पर सन्देह करके उसने भूल की। बैरागी ने जैसा कहा, वैसा करके दिखा दिया। ऊपर आकर उसने बैरागी से क्षमा माँगी।"

राजा ने बैरागी से मोतियों का रहस्य पूछा। बैरागी ने विस्तार से बताते हुए कहा,-"मैं वास्तव में सदानन्द नाम का व्यापारी हूँ। व्यापार के सिलसिले में समुद्री जहाज़ द्वारा अपने माल लेकर कई द्वीपों पर जाता था। तभी इस द्वीप के बारे में एक रहस्य का पता चला। इस द्वीप के चारों ओर चट्टानें हैं। ज्वार भाटे के समय ये चट्टानें दिखाई पड़ती हैं। उन चट्टानों पर अगगिनत सीपियाँ हैं। सीपियों के अन्दर के मांस के लिए बगुले उन्हें उठा लाते हैं और इन चट्टानों पर बैठ जाते हैं। सीपियों में अनगिनत मोती हैं। मैं इन मूल्यवान मोतियों का संग्रह करना चाहता था। किन्तु तभी दुर्भाग्यवश एक दुर्घटना में मेरी पत्नी और बच्चे काल कवलित हो गये। इस दुर्घटना के बाद जीवन से मेरा मन उचट गया। फिर भी इस द्वीप के मोतियों में मेरा मन रमा रहा। मुझे लगा कि जब तक मैं मोतियों के प्रति आसक्ति से मुक्त नहीं हो जाता, तब तक मैं सच्चा बैरागी नहीं बन पाऊँगा। मुझे इस बात का भय था कि कहीं मुझमें सांसारिक विषयों के प्रति आसक्ति बनी न रह जाये और बैराग छोड़कर कहीं मैं पुनः व्यापारी न बन जाऊँ। इसीलिए मैंने आपसे आर्थिक सहायता मांगी। आपके धन से ही यह भूमिगत भण्डार बनवाया। यहाँ सर्वत्र राख डलवा दी। इससे राख के नीचे छिपे मोतियों को बगुले देख नहीं पायेंगे और फिर से वे सीपियाँ लाते रहेंगे। फिर कुछ आदमियों की सहायता से सीपियों से मोती निकलवाये और भूमिगत भण्डार में सुरक्षित रखवाये। मैंने अनुभव किया कि प्रत्यक्ष देख कर ही आप मेरी बातों पर विश्वास करेंगे। इसलिए यह सारी योजना आपसे गुप्त रखी गई। मैंने जो वचन दिया था, उसे पूरा कर दिया। अब आप ही इन मोतियों के मालिक हैं। जीवन के प्रति अब मेरी कोई आसक्ति नहीं रही। अब मैं निश्चिंत होकर तपस्या करना चाहता हूँ। आप और आप की प्रजा सुखी रहे।"

इतना कह कर मोतियों का सारा खजाना राजा को सौंपकर बैरागी वहाँ से चला गया।
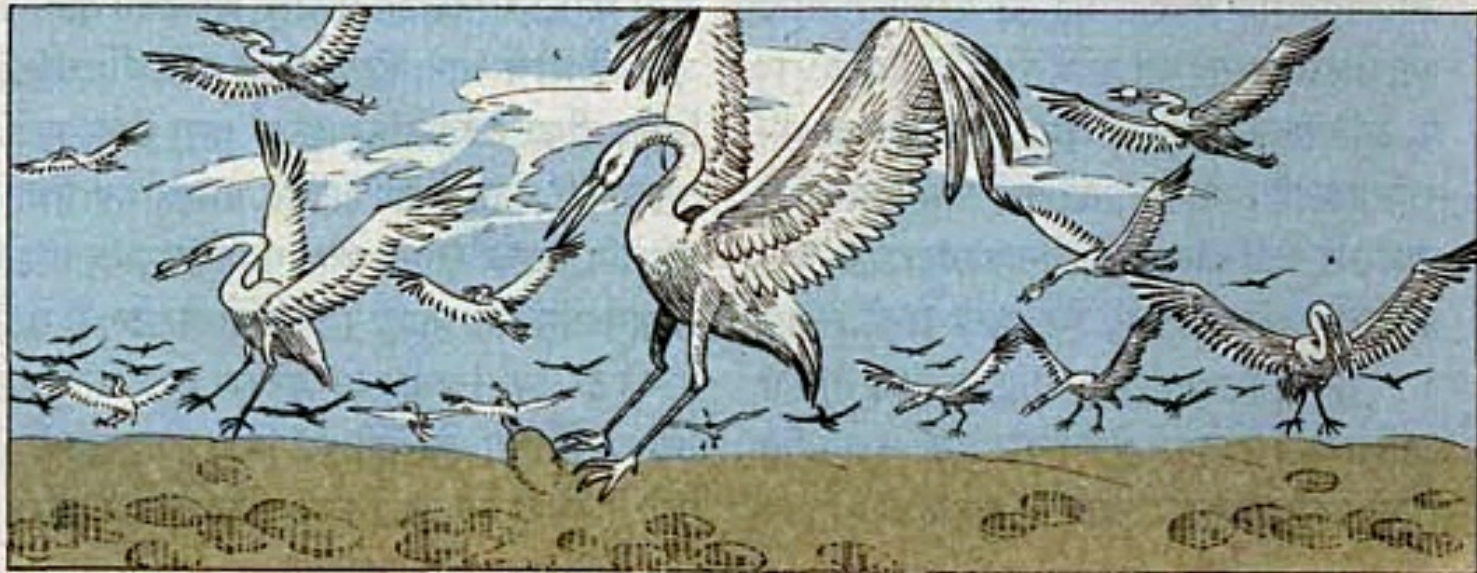
कावेरी के तट पर – III

टीपू की राजधानी

वर्णन : जयंती महालिंगम्   चित्र : गौतम सेन

कृष्णराजसागर से लगभग 37 कि.मी. तक दक्षिण-पूर्व में बहने के बाद कावेरी अचानक दो भागों में बंट जाती है और एक टापू का निर्माण करती है. श्रीरंगपट्टण नाम का यह टापू 5 कि.मी. लंबा और 2 कि.मी. चौड़ा है. यह कावेरी के तीन बड़े टापुओं में से पहला है. तीनों टापुओं पर श्रीरंगपट्टण का मंदिर इस शृंखला का पहला मंदिर होने के कारण *आदिरंग* कहलाता है.

मध्ययुग से ही यह द्वीप एक महत्वपूर्ण सामरिक नाका रहा और 18 वीं सदी के उत्तरार्ध में यह हैदरअली और टीपू सुलतान की राजधानी रहा.

श्रीरंगपट्टण का किला उसके सामरिक महत्व के अनुरूप ही था. इसका निर्माण विजयनगर के राजाओं के शासनकाल में 1454 में हुआ. किले का क्षेत्रफल 5 वर्ग कि.मी. है और उसके भीतर 20,000 की आबादी का खासा बड़ा कस्बा बसा हुआ है. किले का परकोटा 4.5 कि.मी. लंबा है और उसमें चार दरवाजे हैं, जिनमें से तीन बेंगलूर दरवाजा, मैसूर दरवाजा और दिल्ली दरवाजा कहलाते हैं. चौथे का नाम 'वाटर गेट' है, जोकि स्पष्ट ही अंग्रेजों का दिया हुआ नाम है. तीन परकोटों और तीन खंदकों से घिरा किला अब तो जीर्णशीर्ण हो गया है. लेकिन अब भी दर्शक को प्रभावित करता है. किले के भीतर मुख्य प्राचीन इमारतें हैं – रंगनाथ का मंदिर, टीपू की बनवायी मस्जिद, टीपू का लाल महल प्रासाद (जो अब खंडहर के रूप में है) और वे जमींदोज कालकोठरियां जिनमें युद्धबंदी कैद में रखे जाते थे.

शेरे-मैसूर टीपू सुलतान एक विलक्षण व्यक्ति था, जिसे आजादी सबसे ज्यादा प्यारी थी. कुछ इतिहासकारों ने – खासकर अंग्रेजों ने – उसे
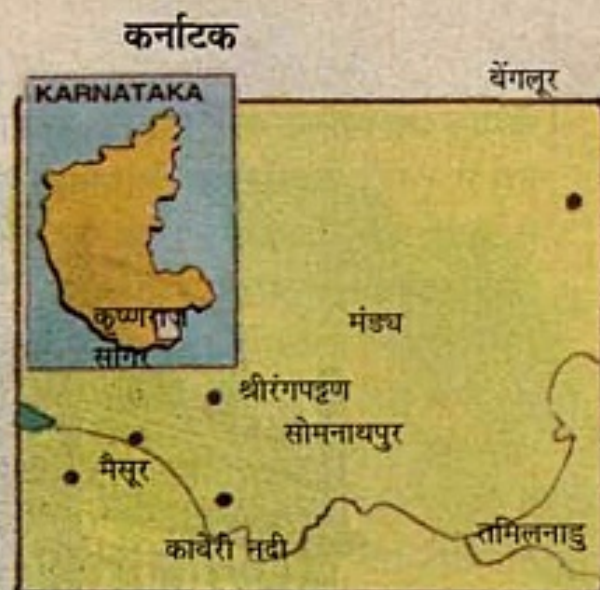
चौखटे में : टीपू सुलतान
श्रीरंगपट्टण का किला

गुंबज

हवासिल

लकलक

बगुला
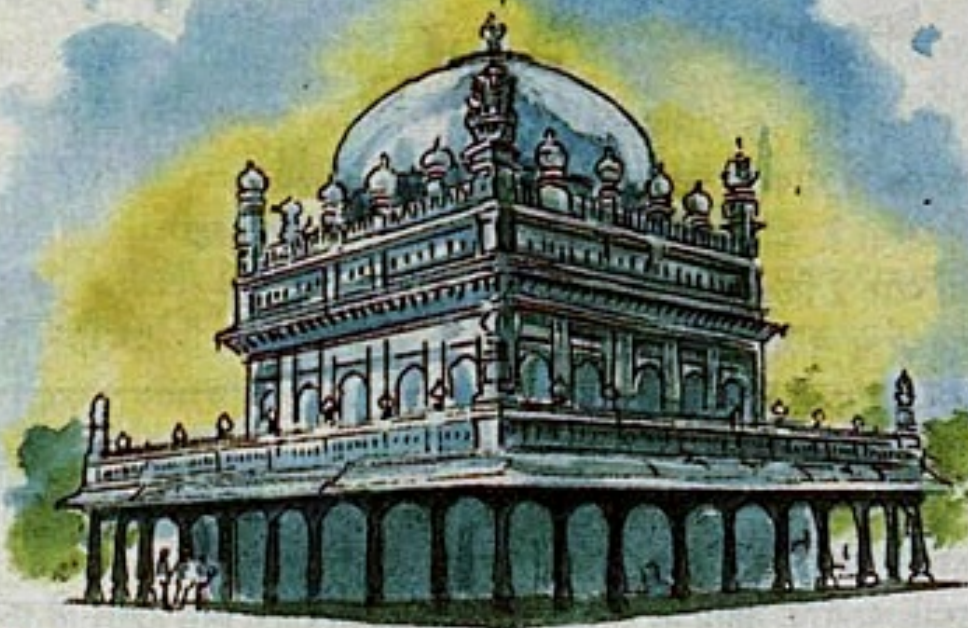
धर्मांध और अत्याचारी चित्रित किया है. मगर यह बात बहुत अतिरंजित लगती है. जब शृंगेरी के शंकराचार्य पर विपदा आयी तो उनके कहने पर टीपू ने सैनिक सहायता भेजी और उनकी जागीर उन्हें वापस दिलवायी. शंकराचार्य को टीपू का लिखा आदरपूर्ण पत्र अब भी सुरक्षित है. हैदर और टीपू दोनों ने हिंदू मंदिरों को उदारता के साथ अनुदान दिये थे. रंगनाथ मंदिर में उनके भेंट किये हुए चांदी के बरतन अब भी मौजूद हैं. कहा जाता है कि युद्धों के लिए प्रस्थान करने से पहले पिता-पुत्र रंगनाथ स्वामी को सिर नवाते थे.

श्रीरंगपट्टण के किले पर आखिरी बड़ा घेरा 1799 में चौथे आंग्ल-मैसूर युद्ध में डाला गया. इस बार टीपू हमले के वेग को झेल न सका. अंतिम मुठभेड़ में पुराने महल के पास नदी की ओर खुलने वाले फाटक (वाटर गेट) के पास शत्रु से जूझते हुए वह घायल हो कर गिर पड़ा और लगभग नीम बेहोशी में उस छोटे द्वार की ओर घिसटने लगा जिससे वह भीतरी परकोटे में पहुंच सकता. मगर मीर सादिक नाम के गद्दार अफसर ने उसकी राह रोक ली और एक अंग्रेज सैनिक की चलायी गोली टीपू के सिर को बींध गयी. टीपू जहां वीरगति को प्राप्त हुआ वहां पर संगमरमर की एक तख्ती लगी हुई है. इस युद्ध में अंग्रेजी फौजों का नेतृत्व आर्थर वेलेज़ली ने किया था जिसने आगे चल कर 1815 में वाटरलू के मोर्चे पर जर्मन जनरल ब्लूखेर की मदद से नेपोलियन को शिकस्त दी.

श्रीरंगपट्टण में टीपू सुलतान के बनवाये तीन उल्लेखनीय स्मारक हैं – मस्जिद, दरिया दौलत और गुंबज. मस्जिद 1787 में बन कर तैयार हुई. 275 सीढ़ियों वाली इसकी दो मीनारों पर से पूरे टापू की झांकी देखी जा सकती है. दरिया दौलत बाग किले के बाहर बना है और उसमें टीपू का ग्रीष्मकालीन महल स्थित है. महल की दीवारों पर टीपू की जंगों की तस्वीरें बनी हुई हैं. अब उसे संग्रहालय का रूप दिया गया है. गुंबज टीपू और उसके माता-पिता का समाधि स्थल है. कस्बे के दक्षिण-पूर्व में बनी यह सुंदर इमारत काले बेसाल्ट पत्थर के खंभों और हाथीदांत के जड़ाऊ काम वाले दरवाजे से मंडित है.

किले के उत्तरी छोर पर स्थित रंगनाथ मंदिर के अलग-अलग हिस्से शायद अलग-अलग सदियों में निर्माण हुए. रंगनाथस्वामी की मुख्य मूर्ति 4.5 मी. लंबी है और शेषनाग की कुंडली पर लेटी हुई है. नाग अपने सात फन भगवान के सिर पर छाये हुए है और लक्ष्मी पायताने बैठी हुई हैं. नीचे गौतम ऋषि और कावेरी की छोटी मूर्तियां स्थापित हैं. भगवान के दर्शन गर्भगृह के बाहर से ही किये जा सकते हैं.

टापू के पूर्वी छोर पर किले के बाहर गंजाम नामक उपनगर है, जिसे टीपू ने बसाया था. किसी समय यह अंजीरों, वस्त्रों और कागज के उत्पादन के लिए मशहूर था. गंजाम की एकमात्र उल्लेखनीय इमारत एक काथलिक गिरजा है, जिसे प्रसिद्ध फ्रांसीसी पादरी एबे द्युबोय ने बनवाया था.

रंगनाथस्वामी मंदिर

श्रीरंगपट्टण से चार कि.मी. आगे कावेरी में एक छोटा टापू है. यही है सुप्रसिद्ध पक्षी-अभयारण्य रंगनतिट्टु. जून से दिसंबर तक जब दूर-दूर के पक्षी यहां प्रजनन के लिए आते हैं तब आकाश उनके रंग की छटा से सुहावना बन जाता है. तरह-तरह के पक्षी यहां आते हैं – बगुले, दाविल, कोडिल्ल, बुज्जा, लकलक आदि. रंगनतिट्टु को 1940 में पक्षी-अभयारण्य घोषित किया गया था.

श्रीरंगपट्टण से कावेरी दक्षिण की ओर बहती है. लगभग 25 कि.मी. आगे नदी के बायें तट पर सोमनाथपुर गांव है. यहां होय्सल शैली का एक सुंदर मंदिर है, जो बेलूर और हलेबीडु के विख्यात मंदिरों से अधिक अच्छी अवस्था में है. होय्सल राजा नरसिंह तृतीय के एक मंत्री सोमनाथ दंडनायक ने 1258 में इसका निर्माण कराया. केशव का यह मंदिर भी अन्य सब होय्सल मंदिरों की भांति सितारे की आकृति में बना है. बाहरी दीवारों पर रामायण-महाभारत की कथाएं उकेरी गयी है, जबकि गर्भगृह में विभिन्न देवी-देवता अंकित हैं, जिनकी संख्या 194 है. मुख्य देवगृह सूना है. कभी यहां पर केशव की मूर्ति विराजती थी.

अधिकांश बड़े हिंदू मंदिरों के स्थपतियों और शिल्पियों के नाम कोई नहीं जानता. किंतु सोमनाथपुर मंदिर के बाहरी भित्तिफलकों पर उनके शिल्पियों के हस्ताक्षर हैं. नफासत से कोरी हुई एक तख्ती पर दाताओं के नाम भी अंकित है. माना जाता है कि सोमनाथ दंडनायक ने चार मंदिर और बनवाये थे. उनमें से सिर्फ दो अब बाकी हैं. वे हैं – पंचलिंगेश्वर मंदिर और लक्ष्मीनरसिंह मंदिर. दोनों खंडहरों की हालत में हैं. अगर केशव मंदिर की ठीक से मरम्मत तुरंत न करायी गयी तो उसकी भी यही हालत हो जाने का खतरा है.

सोमनाथपुर का
केशव मंदिर

© अमृत भारती, भारतीय विद्या भवन, 1998

आधा आशीर्वाद-आधा शाप

विदेह देश के कोदंडगिरि गाँव में कोदंड सेठ नाम का व्यापारी रहता था। वह पूरी ईमानदारी से व्यापार करता था। इसलिए गाँव के लोग उसे आदर की दृष्टि से देखते थे। वह आनन्दपूर्वक जीवन व्यतीत कर रहा था।

अरुणा उसकी एक मात्र सन्तान थी। वह बड़ी ही सुन्दर व सुशील थी। लेकिन पुत्र न होने के कारण वह चाहता था कि अपने एक दूरस्थ सम्बन्धी के पुत्र विनयशील से अपनी पुत्री का विवाह कर उसे घरजंवाई बना ले। अपनी यह इच्छा प्रकट करते हुए विनयशील के पिता को खबर भेजी।

विनयशील की माँ को प्रस्ताव अच्छा लगा। उसने अपने पति से कहा, -''कोदंड सेठ को शायद यह नहीं मालूम कि व्यापार में इस वर्ष हमें कितना नुकसान उठाना पड़ा है और ऋण के भार से हम कितना दब गये हैं। और इसीलिए अपने बेटे विनयशील को व्यापार के लिए कुन्तल द्वीप भी भेज रहे हैं।

''यद्यपि कुन्तल द्वीप के राजा से स्वीकृति मिल चुकी है और विनयशील ने जाने की सारी तैयारी भी कर ली है, फिर भी मेरे विचार में यही उत्तम होगा कि विनय को कुन्तल द्वीप न भेज कर कोदंड सेठ की पुत्री से उसका विवाह कर दें। उसके दहेज में मिले धन से हम ऋण चुका देंगे। और व्यापार से जो कुछ मिल जायेगा उसी में सन्तोष कर शान्तिपूर्वक जीवन यापन कर लेंगे। विनय को दूर देश में अकेले भेजने से जो हमलोगों को चिन्ता बनी रहती, उससे भी हम बच जायेंगे। और कौन जाने, भगवान की कृपा हुई तो यहीं हमारे व्यापार में फिर से अच्छे दिन पलट आयेंगे।''

विनयशील माँ की बातें सुन रहा था। उसे घरजंवाई बनने की अपेक्षा अपने पुरुषार्थ से धन

कमाना अधिक पसन्द था। उसने माँ से कहा,

''आर्थिक कठिनाइयों से घबरा कर ही ऐसी बातें कर रही हो, माँ। कठिनाइयाँ बुरी नहीं होतीं, कठिनाइयों से डर जाना बुरा अवश्य होता है।

''मैं नहीं चाहता कि हमारे परिवार की आन्तरिक स्थिति बाहर के लोगों को मालूम हो। खास कर उन्हें जिनसे हमारे सम्बन्ध होनेवाले हैं। यदि उस परिवार में विवाह हो गया और उनके यहाँ मैं घरजंवाई बन कर चला भी गया तो उन्हें हमारे घर की असलियत तो मालूम हो ही जायेगी। फिर वे हमारे बारे में क्या सोचेंगे? कहेंगे कि ऋण चुकाने के लिए ही उनसे सम्बन्ध किया है। वे हमें अनादर की दृष्टि से देखेंगे। उनकी नज़र से हम गिर जायेंगे। मुझे नौकर की तरह उस घर में रहना पड़ेगा।

''मेरा यह मतलब कदापि नहीं है कि मैं अरुणा से विवाह नहीं करना चाहता। मैं तो सिर्फ़ इतना चाहता हूँ कि विवाह से पूर्व मैं भी उस घर की प्रतिष्ठा के अनुकूल बनूँ। कुंतलद्वीप के महाराज से वहाँ जाने की अनुमति मुझे मिल ही चुकी है। वहाँ हमारे देश की वस्तुएं दुगुने दाम पर बिकती हैं। वहाँ सोना बहुत सस्ता मिलता है। दो सालों में धन कमाकर काफी सोना ला सकता हूँ और हम भी फिर से उतने ही धनी और प्रतिष्ठित हो सकते हैं। सिर्फ़ दो साल इन्तजार करो माँ, सिर्फ़ दो साल।''

विनयशील के पिता अपने पुत्र की बातें सुन कर बहुत प्रसन्न हुए। उसकी बातों का समर्थन करते हुए पत्नी से बोले,- 'व्यापार-बुद्धि हमारे परिवार में वंश-परम्परा से मिली है। विनयशील की बातों में एक होनहार व्यापारी की झलक मिलती है। संकट में दुखी-दीन होकर किसी के सामने झुकना मेरा भी स्वभाव नहीं है।'' फिर उन्होंने विनयशील को सम्बोधित करते हुए कहा- ''फिर

भी बेटे, मेरी एक सलाह है। कुंतलद्वीप तुम अवश्य जाओ, परन्तु जाने से पूर्व कोदंडसेठ से एक बार अवश्य मिल लो।''

विनयशील कोदंड सेठ से मिलने चला गया। कोदंड सेठ बहुत प्रसन्न हुआ। जब उसे पता चला कि विनयशील व्यापार के लिए कुन्तलद्वीप जा रहा है तो वह बोला,-''समुद्र पार करके दूर किसी अन्य देश में जाकर व्यापार करना कठिन और जोखिम भरा कार्य है। मुझे चिन्ता हो रही है, फिर भी तुम्हारे आग्रह को देखते हुए तुम्हें रोकना भी उचित नहीं।

''तुम वहाँ धन कमाओ या न कमाओ पर यदि दो वर्ष के अन्दर वापस आ गये तो अपनी बेटी का विवाह तुम्हारे साथ ही करूँगा।''

विनयशील अरुणा से मिला। अरुणा की सुन्दरतास्वभाव ने उसके मन को मोह लिया।

उसने अरुणा से कहा,-''तुमसे मिलने के बाद कुंतलद्वीप जाने की इच्छा नहीं हो रही है। लगता है, तुम से विवाह करके यहीं रह जाऊँ। तुम्हारे पिता जी का भी यही विचार है।''

''लेकिन तुम्हारी इच्छा क्या है?'' थोड़ी देर रुक कर विनयशील ने पूछा।

''कोदंडगिरी एक छोटा सा गाँव है।'' कुछ देर सोच कर मुस्कुराती हुई अरुणा बोली।-''यह बड़े व्यापार के लिए और तुम्हारी प्रतिभा और योग्यता के सही उपयोग के लिए उपयुक्त स्थान नहीं है। सच्चे और साहसिक व्यापारी नये क्षितिजों की खोज करते हैं। मैं तो चाहती हूँ कि तुम समुद्र पार कर नये देश में जाओ और व्यापार में करोड़ों रुपये कमाओ। बड़ा व्यापारी बनो। देश-विदेश में तुम्हारा नाम हो। मुझे इस बात की चिन्ता नहीं होगी कि वहाँ तुमने कितना धन कमाया। बल्कि हमें इस बात का अधिक हर्ष और गर्व होगा कि विदेश से व्यापार करके लौटे एक बड़े व्यापारी की पत्नी हूँ। दो वर्षों के बाद जब तुम एक सफल और अनुभवी

व्यापारी बन कर विदेश से लौटोगे तो मेरी खुशी का ठिकाना न रहेगा। वहाँ के अनुभव से यहाँ तुम्हें और भी धन और नाम कमाने में सहायता मिलेगी।

''तुम्हें कुंतलद्वीप के राजा की अनुमति भी प्राप्त हो चुकी है। इस अवसर का सही विनियोग करो। सुनहरे भविष्य के लिए वर्तमान के थोड़े-से सुख का त्याग करने में ही बुद्धिमानी है।''

विनयशील अरुणा से कहा-''अब मुझे मालूम हो गया कि क्यों हर पुरुष की सफलता के लिए किसी स्त्री की प्रेरणा आवश्यक होती है।

विनयशील अरुणा की प्रेम भरी शुभकामनाएं तथा उसके और अपने माता-पिता के आशीर्वाद लेकर कुंतल द्वीप की यात्रा पर चल पड़ा।

कुंतल द्वीप में विनयशील को व्यापार में भारी सफलताा मिली। उसने दो वर्षों में पर्याप्त धन कमाया। धन का बड़ा अंश अपने माता-पिता को भेजता रहा जिससे वे ऋण चुकाते रहे और फिर से व्यापार में जुट गये। कुंतल द्वीप में विनयशील को एक मेधावी और प्रतिष्ठित व्यापारी के रूप में सम्मान मिलने लगा।

तभी अचानक-अप्रत्याशित घटी एक घटना से सब के हृदय दहल उठे। कुंतल द्वीप के राजा पर जान लेवा हमला किया गया। सौभाग्य से वे बच गये। किन्तु हत्या के प्रयासों की जाँच से यह पता चला कि षड्यंत्रकारी विदेह देश में छिपे हैं। इसलिए कुंतल द्वीप के राजा ने विदेह देश के राजा के पास दूत द्वारा यह सन्देश भेजा कि ''जाँच द्वारा यह साबित हो चुका है कि मेरी हत्या के षड्यंत्रकारी आप के देश में छिपे हुए हैं। हम आप के देश को मित्र-देश मानते हैं। एक मित्र-देश के नाते आप का कर्तव्य है कि दोषी व्यक्तियों का पता लगा कर और उन्हें पकड़ कर हमारे देश को सौंप दें। यदि इस गंभीर मामले में आप का समुचित सहयोग नहीं मिला तो हमें यह समझने के लिए बाध्य होना पड़ेगा कि आप मित्र नहीं शत्रु हैं और जान-बूझ कर आपने उन अपराधियों को शरण दी है।''

अन्त में उन्होंने चेतावनी देते हुए यह भी लिखा कि ''यदि आपने इस पर तत्परता से कार्रवाई नहीं की तो हमारे राज्य में व्यापार या अन्य कार्य करनेवाले आप के देश के नागरिक निर्दयतापूर्वक मारे जायेंगे।''

विदेह के राजा इस आरोप को पढ़ कर बहुत दुखी हुए। उन्होंने तुरन्त अपने गुप्तचरों को बुला

कर यह पता लगाने का आदेश दिया कि इस दोषारोपण में कितना सत्य है और यदि यह सत्य है तो अपराधी को शीघ्र पकड़ कर लाओ चाहे वह कितना भी सम्मानित व्यक्ति क्यों न हो।

गुप्तचर सारे राज्य में जाल बना कर फैल गये और अपराधी का पता करने लगे। सभी सन्देहास्पद व्यक्तियों पर कड़ी निगरानी रखी गई। विनयशील के होनेवाले ससुर भी उनमें से एक थे। इनके किसी सम्बन्धी के घर विवाह के अवसर पर एक पुरोहित और एक कवि आये हुए थे। इन्हें ठहरने के लिए उन्होंने अपनी कोठी में एक कमरा दे दिया था।

पुरोहित ने दीवार की एक खूंटी पर अपना कुर्ता लटका दिया था जो निकालते समय फट गया। इस पर कवि ने टिप्पणी की-''हड्डियां नहीं, सिर नहीं, हाथ हैं पर पांव नहीं। फट जाये तो क्या हुआ। पहनने के बाद जान आ जायेगी।'' यह कह कर कवि हँसने लगा।

पुरोहित नाराज होकर बोला,-''अपनी कविता बन्द करो कवि महाराज! मैं सूई-धागे से इसे सी लूँगा।''

तभी कवि की दृष्टि खिड़की से अरुणा पर पड़ गई। उसने उसे बुला कर कहा, ''मुझे वह ला दो जिसकी एक आँख होती है। परन्तु वह कौआ नहीं। साथ में उसे भी ले आओ जो समुद्र की तरह बढ़ता है और चाँद की तरह घटता है। परन्तु न तो वह समुद्र है, न चाँद। यदि ये दोनों मिल जायें तो पुरोहित की आवश्यकता पूरी हो जायेगी।''

ऐसी भेद भरी बातें सुन कर अरुणा घबरा गई। अरुणा के पिता ने ये बातें सुन लीं। उन्होंने कवि

को फटकारते हुए कहा,-''ऐसी निरर्थक बातों से मुझे संकट में मत डालिए। इस समय सारे देश में गुप्तचर घूम रहे हैं। यदि उन्होंने आप की सन्देह और भेद भरी बातें सुन लीं तो हम दोनों को ही जेल जाना पड़ेगा।'' उन्होंने यह भी स्पष्ट किया कि क्यों गुप्तचर देश भर में घूम रहे हैं और वे क्या पता कर रहे हैं।

कोदंड सेठ का भय देख कर कवि हँस पड़ा और बोला,-''मेरी बातों में कोई रहस्य नहीं है, सेठजी। एक आँख वाली का अर्थ है-सूई। और बढ़ने पर घटनेवाला है धागा। अलंकारपूर्ण शब्दों का प्रयोग कवियों का स्वभाव है। अपने घर में अपने हमें आश्रय दिया इसके लिए मैं आप को आशीर्वाद देता हूँ। और जो आप को कष्ट दें- उन्हें मेरे शाप लगें। कवि के मुख से निकला वचन ब्रह्म-

वाक्य के समान होता है। षड़यंत्रकारी छिपने के लिए मन्दिर जैसे स्थलों को ही चुनते हैं। आशा है, ऐसा ही होगा। आधा आशीर्वाद और आधा शाप के नामवाले चमत्कार से आप को आशीर्वाद दे रहा हूँ। यह संकेत है उस पक्षी की ओर जो पक्षियों का राजा माना जाता है।''

सेठ की समझ में कुछ नहीं आया। पर सेठ के घर के पास घूम रहे गुप्तचरों को लगा जैसे उन्हें कवि के शब्दों में अपराधियों का संकेत मिल गया हो। उन्होंने कवि के रहस्य भरे वचन का अर्थ इस प्रकार निकाला कि षड्यंत्रकारी एक ऐसे मन्दिर में छिपे हुए हैं जिस के देवता पक्षियों के राजा गरुड़ के स्वामी हैं या विष्णु हैं या विष्णु के कोई अवतार हैं।

गुप्तचरों को गाँव में ढूंढते-ढूंढते सचमुच एक पुराना मंदिर मिला जो प्राचीन काल में गरुड़ द्वारा प्रतिष्ठापित विष्णु के अवतार नरसिंह भगवान का देवालय था। उस देवालय की पूरी तरह छान-बीन करने पर कुंतलद्वीप के राजद्रोहियों का पता चल गया।

राजा ने उन सब को बन्दी बना लिया और कुंतलद्वीप के राजा को सौंप दिया। विनयशील तथा विदेह देश के अन्य व्यापारी सकुशल स्वदेश वापस लौट आये। कोदंड सेठ ने अपनी पुत्री अरुणा का विवाह बड़े धूमधाम से किया, जिसमें राजा भी शामिल हुए और नवविवाहित दम्पति को आशीर्वाद दिया। इस विवाहोत्सव में राजा ने उस कवि को भी बहुमूल्य उपहार देकर सम्मानित किया, जिसके रहस्यमय शब्दों के संकेत के सहारे गुप्तचरों ने कुंतलद्वीप के षड़यंत्रकारियों का पता लगा कर अपने राजा और देश को एक बड़े लांछन से बचा लिया था।

दो वर्षों की प्रतीक्षा के बाद विवाहोपरान्त विनयशील अपने व्यापार की सारी सफलता का श्रेय अरुणा की प्रेरणा और प्रतीक्षा को देकर अपने को धन्य समझ रहा था। अरुणा एक सफल और ख्यातिप्राप्त व्यापारी के रूप में अपने सपनों का पति पाकर गर्व से फूली न समाती थी।

धृतराष्ट्र ने भी अपने पुत्र दुर्योधन को सचेत करते हुए कहा कि युद्ध सब के लिए विनाशकारी है। किसी तरह इस विनाश को रोको। किन्तु दुर्योधन किसी की भी बात सुनने के लिए तैयार नहीं था। तब सभा में उपस्थित सब राजाओं को लगा कि युद्ध होकर ही रहेगा, किसी भी स्थिति में इसे टाला नहीं जा सकता। वे युद्ध की तैयारी करने के लिए वहाँ से उठ कर चले गये।

धृतराष्ट्र को पूरी आशा थी कि युद्ध में उसके पुत्रों की ही विजय होगी। उसने संजय को एकान्त में बुलाया और कहा,-''संजय, तुम तो पांडवों और कौरवों के बल-पराक्रम के विषय में भली-भाँति जानते हो। अतः मुझे बताओ कि पांडवों के पक्ष में युद्ध करने वाले राजाओं में से कौन-कौन उत्साह दिखा रहे हैं और कौन-कौन उदासीनता?''

संजय ने कहा,- ''राजन, एकान्त में मैं आप से कुछ नहीं बताऊंगा। मेरी बातें सुन कर आप में ईर्ष्या जगेगी। इसलिए अच्छा होगा कि व्यास और गांधारी को भी यहाँ बुला लें।''

धृतराष्ट्र ने व्यास और गांधारी को बुला भेजा। उनकी उपस्थिति में संजय ने धृतराष्ट्र को सम्बोधित करते हुए कहा,-''राजन, कृष्ण और अर्जुन अवतार-पुरुष हैं, महावीर हैं। यदि तीनों लोक के योद्धा भी उनके विरुद्ध खड़े हो जायें, तब भी वे कृष्ण को परास्त करने की सामर्थ्य नहीं रखते। ऐसे पुरुष कृष्ण आप के पुत्रों का विनाश करने के लिए कृत-संकल्प हैं।''

''संजय, यह रहस्य तुम कैसे जानते हो? मैं क्यों नहीं जान सका?'' धृतराष्ट्र ने पूछा।

''राजन, आप विद्या-विहीन हैं। आप का मन

तामसिक गुणों से भर गया है, कलुषित हो गया है। मैं विद्या द्वारा ही कृष्ण की महानता को जान सका हूँ।" संजय ने निःसंकोच निर्भय होकर कहा।

व्यास ने धृतराष्ट्र से कहा,-"कृष्ण तुम्हें बहुत चाहता है। संजय कृष्ण के विषय में पूर्ण ज्ञान रखता है। उसके कथनानुसार करने पर तुम्हारा लाभ होगा।"

उपप्लाव्य से संजय के हस्तिनापुर लौट जाने के बाद धर्मराज ने कृष्ण से कहा,- "कृष्ण, इस संकट की स्थिति में मित्र ही हमारी सहायता कर सकते हैं। और तुमसे बढ़ कर हमारा और कौन मित्र हो सकता है। तुम्हारे ही भरोसे हमने कौरवों के नाश का संकल्प लिया है। हमारी रक्षा का भार तुम्हीं पर है।"

"तुम्हें जो कहना है, निश्चिंत होकर कहो।" श्री कृष्ण ने आश्वासन देते हुए कहा।

तब धर्मराज ने कहा,-"सभा में संजय ने जो भी कहा, तुमने सुना। उसने धृतराष्ट्र की कही बातें ही दुहरा दीं। वे लोभी वृद्ध हमारा राज्य दिये बिना ही शांति की रट लगा रहे हैं। धृतराष्ट्र पर विश्वास करके हमने कठोर वनवास झेला। मैं अपनी माता व हितैषियों को भी कुछ सुख न दे सका। लेकिन उन्होंने दुर्योधन की हाँ में हाँ मिला दी। वे वही करेंगे जो दुर्योधन चाहता है।

"मैंने तो यहाँ तक कह दिया कि हमें केवल पाँच गाँव दे दो तब भी युद्ध नहीं करेंगे। दुर्योधन इसके लिए भी तैयार नहीं है। दरिद्रता से तो मृत्यु कहीं अच्छी है। क्षत्रिय धर्म बड़ा ही कठोर और क्रूर है। किन्तु क्षत्रिय होकर क्षत्रिय धर्म का त्याग भी नहीं कर सकते, और कोई अन्य वृति नहीं अपना सकते। इसलिए हमारे शान्ति-प्रयास के बावजूद यदि हमें बाध्य किया गया तो न्याय के लिए युद्ध हमें करना ही होगा।

"अब तुम्हीं बताओ कृष्ण, हम किस मार्ग पर चलें? ऐसी परिस्थिति में हमारा क्या कर्तव्य होना चाहिए?"

श्री कृष्ण ने ध्यानपूर्वक धर्मराज की बातें सुनीं। फिर गंभीर होकर बोले,-"राजन, मेरी दृष्टि में

पाण्डव और कौरव एक समान हैं। दोनों पक्षों के हित को ध्यान में रख कर कौरवों से बात करूँगा और आप के मन्तव्य को सिद्ध करने का भरसक प्रयास करूँगा। यदि इस पुण्यकर्म में सफलता मिल गई तो कितने ही लोगों को काल-कवलित होने से बचाने का श्रेय तो मुझे भी मिलेगा।''

लेकिन दुष्ट दुर्योधन तुम्हारी बात कभी नहीं मानेगा। जितने भी राजा उसके साथ हैं, उसी की हाँ में हाँ मिलानेवाले हैं। किसी में यह साहस नहीं है कि सत्य का साथ दे और तुम्हारा समर्थन करे। उनके व्यवहार से या बातचीत से तुम्हें कुछ, थोड़ा-सा भी कष्ट हुआ तो मेरे लिए यह असहनीय होगा।'' धर्मराज ने खिन्न मन से कहा।

श्री कृष्ण ने दृढ़तापूर्वक कहा,-''मैं दुर्योधन के बारे में सब कुछ जानता हूँ, धर्मराज! उसके पक्ष के राजाओं को भी मेरे दृष्टिकोण के बारे में सब कुछ मालूम है। मुझसे लड़ने-भिड़ने या मुझे अपमानित करने का वे साहस नहीं करेंगे। यदि किसी ने ऐसा दुस्साहस किया तो मैं उनका सर्वनाश कर दूँगा। यदि उनके अपमान के भय से शांति का यह अन्तिम प्रयास नहीं किया तो लोग मुझ पर दोषारोपण करेंगे, कीचड़ उछालेंगे। इसलिए, वे लोग मेरे साथ कैसा भी आचरण करें, वहाँ मेरा जाना अत्यावश्यक है।''

श्री कृष्ण की दृढ़ता देख कर धर्मराज शान्त हो गये। बोले,-''मैंने तुम्हें रोकने के विचार से नहीं कहा था, कृष्ण। हम सब तुम्हारे ही बताये मार्ग पर चलना चाहते हैं। तुम्हीं हमारे मार्ग-दर्शक हो। तुम हस्तिनापुर अवश्य जाओ। और शान्ति का यह अन्तिम प्रयास अवश्य करो। आवश्यकता पड़ने पर कठोरतापूर्वक व्यवहार करने में संकोच मत करना।''

श्री कृष्ण ने समझाते हुए कहा,-''धर्मराज! तुमने तो धर्म का आश्रय लिया है, किन्तु दुर्योधन अधर्म का अवतार है। क्षत्रिय धर्म है धर्म की रक्षा के लिए युद्ध करना। जीतें या हारें, इसका विचार किये बिना हमें युद्ध के लिए तैयार
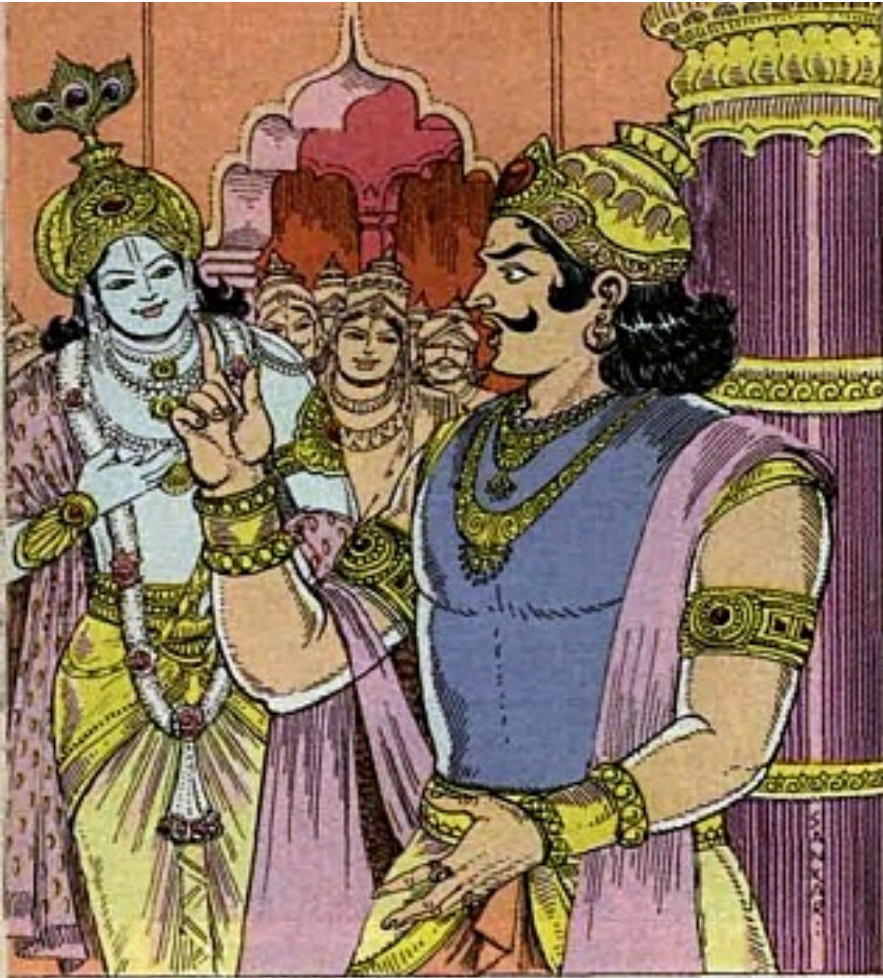
रहना चाहिए। क्षत्रिय भीख नहीं मांगता। अपने अधिकार के लिए अपनी स्वाभाविक प्रवृति का प्रयोग करता है।

''जब तक तुम उनके प्रति सहानुभूति दिखाते रहोगे, तब तक वे तुम्हारे प्रति और दुष्टतापूर्ण आचरण करेंगे और तुम्हारे राज्य पर भी अधिकार किये रहेंगे क्योंकि यही उनकी आसुरी प्रवृति है।

श्री कृष्ण बोलते रहे।

''उन्होंने अब तक जितना अधर्म किया, तुम्हारे प्रति जितना अन्याय किया, इसके लिए उनके मन में कोई पश्चाताप नहीं है। वे हमारे शान्ति-प्रस्ताव को भी दुकरा देंगे, यह मुझे निश्चित रूप से मालूम है। और तुम भी इस भ्रान्ति में न रहना कि धृतराष्ट्र अथवा भीष्म पितामाह शान्ति के पक्ष में या तुम्हारे हित के पक्ष में विचार करेंगे। अतः उनके प्रति तुम्हारा भक्ति भाव बिल्कुल अनुचित है।

''मैं कौरवों की सभा में उनके सारे कुकर्मों पर प्रकाश डालूँगा और तुम्हारी धर्म परायणता पर बल दूँगा। मैं शान्ति के सारे प्रयास करूँगा और तुम्हारे हित का भी ध्यान रखूँगा। फिर भी परिस्थितियों को देखते हुए मुझे लगता है कि युद्ध अनिवार्य है। जब तक दुर्योधन जीवित रहेगा, तुम्हारा राज्य तुम्हें नहीं प्राप्त होगा। अतः युद्ध की तैयारी में लग जाओ।''

फिर भीम ने भी श्री कृष्ण को समझाते हुए कहा,-''कौरव सभा में तुम्हारा जाना और शान्ति का प्रयास करना निस्सन्देह आवश्यक है। सब की उपस्थिति में दुर्योधन को समझाना। उस राक्षस को समझाना यद्यपि दुसाध्य है, फिर भी उससे स्नेह और मैत्री भाव से बात करना। देखना कि हमारे वंश पर विनाश के बादल न मंडरायें। धर्मराज और अर्जुन को और मुझे युद्ध में आसक्ति नहीं है। हम सब यही कामना करते हैं कि यदि सम्भव हो तो युद्ध टल जाये।''

भीम ने आज तक कौरवों के प्रति इतनी सहृदयता के साथ कभी बात नहीं की थी। और न शांति के पक्ष में इतनी उदारता दिखाई थी।

श्री कृष्ण को भीम की बात सुन कर बड़ी

निराशा हुई। उसकी बातों में, दुष्ट कौरवों द्वारा अपमानित होने के कारण घृणा या बदले का भाव दूर-दूर तक नहीं था। इसलिए श्री कृष्ण ने भीम के मन में युद्धाग्नि भड़काने के उद्देश्य से कहा,-" भीम! आज तुम बड़े ठण्डे दिखाई दे रहे हो। तुम तो युद्ध के लिए उतावले रहते थे। क्या तुमने धृतराष्ट्र के पुत्रों को मारने का संकल्प त्याग दिया? दुर्योधन को अपने हाथों मारने का सपना भूल गये? जब युद्ध का समय नहीं आया था तब तो इसकी प्रतीक्षा में भोजन और नींद भूल कर छटपटाते थे और आज शान्ति की भीख माँग रहे हो। क्या तुम उनके बल पराक्रम से भयभीत हो गये हो? और इसीलिए शान्ति की कामना कर रहे हो? मुझे सहसा विश्वास नहीं हुआ कि भीम ऐसी बात कर सकता है।

"तुम्हें यह कायरता शोभा नहीं देती भीम! क्या तुम अपना अतुलनीय बल-पराक्रम भूल गये? तुम्हारी शूरवीरता के समक्ष इस पृथ्वी पर कोई महाबली ठहर नहीं सकता। तुमने कितने ही महान कार्य करके अपना जीवन कृत-कृत्य किया है। तुम्हारे जैसा योद्धा और महाबली अपनी भुजाओं से अर्जित राज्य का ही उपभोग करना पसन्द करेगा न कि दूसरों के दान पर निर्भर करेगा।

श्री कृष्ण की बातों से भीम की भुजाएं फड़कने लगीं। उसके हृदय की सोई हुई युद्धाग्नि भड़क उठी। वह रोष भरे शब्दों में बोला,-"तुमने मुझे ग़लत समझ लिया कृष्ण! तुम तो मुझे बहुत निकट से जानते हो। फिर भी तुमने मेरे विषय में ऐसी टिप्पणी की? मैं भली भाँति अपनी अतुलनीय शक्ति के प्रति सचेतन हूँ। मेरी भुजाओं में आनेवाला कोई भी शत्रु, चाहे कितना भी बलशाली हो, बच कर नहीं जा सकता। जब युद्ध होगा तब देखना मेरा शौर्य, मेरा बल पराक्रम! भयभीत मैं किसी से नहीं होता-चाहे वह देव, असुर, यक्ष, किन्नर क्यों न हो।

"मैंने तो भरत वंश को सर्वनाश से बचाने के लिए शान्ति के भरसक प्रयास की कामना की थी।"

श्री कृष्ण ने मुस्कुराते हुए कहा,-'' भीम! मैंने किसी भी प्रकार से तुम्हें लघु समझ कर ये बातें नहीं कहीं। तुम्हारी शक्ति के विषय में तुम से भी अधिक मैं जानता हूँ। मैं स्वयं भी युद्ध के पक्ष में नहीं हूँ। तब भी तुम्हारे हितों को ध्यान में रखते हुए शांति के लिए भरसक प्रयास करूँगा। फिर भी, यदि मेरा शान्ति-प्रयास विफल हुआ तो युद्ध निश्चित है। ऐसी परिस्थिति में युद्ध का सारा भार तुम्हारे ही कंधों पर होगा। तुम्हें युद्ध के लिए तैयार करने की दृष्टि से ही मैंने यह सब कह दिया। अन्यथा न लेना।''

तब अर्जुन ने अपना विचार प्रकट करते हुए श्री कृष्ण से कहा,-''अग्रज धर्मराज ने अपना विचार दे ही दिया है। मुझे अपनी ओर से कुछ नहीं कहना है। मैं तुम्हारी हर बात से सहमत हूँ। जैसा तुम चाहोगे, हम सब वैसा ही करेंगे। हमारा अटल विश्वास है कि जो तुम चाहोगे या करोगे, उसी में हम सब का हित है। यदि उनका विनाश अवश्यम्भावी है तो हम वही करेंगे। तुम्हें ही निर्णय करना है कि हम सब की भलाई किसमें है।''

नकुल ने अर्जुन की बातों का अनुमोदन करते हुए कहा कि ''कृष्ण, परिस्थिति के अनुसार जैसा उचित समझाना, वैसा करना।''

सहदेव ने युद्ध का समर्थन करते हुए कहा,-''यदि कौरव युद्ध नहीं चाहें तब भी प्रयास करना कि युद्ध अवश्य हो।

सात्यकि ने भी सहदेव का समर्थन किया।

द्रौपदी ने दुःख और रोष भरे स्वर में कहा,-''धर्मराज ने शांति की रक्षा के लिए केवल पाँच गाँव ही माँगे, किन्तु दुर्योधन ने वह भी नहीं दिया। कृष्ण! अब हमें पूरा राज्य चाहिए। यह उन्हें बता देना। तभी शान्ति होगी। मेरे दृष्टिकोण से यही धर्म और सत्य का मार्ग है। पांडव दुष्ट कौरवों का नाश करने में समर्थ हैं। और जब तुम हमारे साथ हो तो भय कैसा?

''दुर्योधन ने बहुत बुरी तरह मुझे अपमानित किया था। फिर भी अब तक वह जीवित है। पाँच महाबली पतियों के रहते हुए भी। जिन अपवित्र हाथों से दुःशासन ने मेरे केश पकड़ कर बलपूर्वक खींचा था, उन हाथों को जब तक काटा नहीं जायेगा, मैं शान्त नहीं रहूंगी। तब तक मेरे हृदय में प्रतिशोध की ज्वाला धधकती ही रहेगी। सन्धि की चर्चा यदि वे करें तो इन बातों को याद दिलाना न भूलना।''

श्री कृष्ण ने सब की बातें ध्यान से सुनीं। जब सब ने अपने-अपने विचार प्रकट कर लिये, तब श्री कृष्ण सन्धि वार्ता के लिए चलने को तैयार हो गये। चलते समय सात्यकि से बोले,-''शंख, चक्र, गदा और कुछ आयुध रथ में रख दो। दुर्योधन दुष्ट है और उससे भी दुष्ट हैं-शकुनि और कर्ण। स्वयं समर्थ होते हुए भी शत्रु की शक्ति को कम नहीं समझना चाहिये।''

श्री कृष्ण और सात्यकि रथ में सवार होकर चल पड़े। पांडव, चेकितान, धृष्टकेतु, द्रुपद, काशिराज, धृष्टद्युम्न, विराट आदि राजे थोड़ी दूर तक उन्हें विदा करने गये।

विदा करते समय धर्मराज ने श्रीकृष्ण से गले मिल कर कहा,-''माँ कुन्ती का समाचार लाना। उन्होंने हमें बड़े लाड़-प्यार से पाला है। हमारे कारण उन्हें कितने कष्ट झेलने पड़े। हम सब की ओर से उन्हें गले लगाना और आश्वासन देना। धृतराष्ट्र, भीष्म, द्रोण, कृपाचार्य, वाह्लिक, सोमदत्त आदि बड़ों को हम सब का आदर देना। विदुर को मेरा सप्रेम आलिंगन देना।''

फिर सब श्री कृष्ण को विदा कर वापस लौट आये।

श्री कृष्ण ने उस रात वृकस्थल नामक गाँव में विश्राम किया। गाँव के सभी प्रमुख ने इनका यथोचित स्वागत-सत्कार किया। श्री कृष्ण भी अपने अतिथि गृह में उन सब से आदर-भाव से मिले।

दंबोध्भव

सम्पदा एवं ऐश्वर्य से परिपूर्ण एक राज्य का कुशल राजा था दम्बोध्भव। वह धर्मबद्ध होकर सुचारु रूप से प्रजा पर शासन करता था किन्तु वह आवश्यकता से अधिक अहंकारी और महत्वाकांक्षी था। उसकी अदम्य इच्छा थी कि पृथ्वी के समस्त विनासी उसे सर्वश्रेष्ठ राजा और महानतम पुरुष के रूप में मानें और सम्मान करें। यह भावना दिन व दिन उसमें प्रबल होती गई। वह प्रतिदिन सिंहासन पर आसीन होते ही पूछा करता, "मित्रों, सेनापतियों, प्रतिनिधियों! क्या मुझ से भी अधिक श्रेष्ठ, शक्ति सम्पन्न, महान व्यक्ति इस पृथ्वी पर है? यदि है तो बताओ।"

कोई भी राजा के क्रोध का शिकार होना नहीं चाहता था। इसलिए सब मुक्त कण्ठ से यही कहते, "नहीं प्रभो! कोई नहीं। आप की बराबरी का कोई भी राजा धरती पर है ही नहीं।"

राजा आनन्द से झूम उठता था।

कुछ दिनों के पश्चात उस राजा के पास एक मुनि आए। राजा ने मुनि से भी यही प्रश्न किया। मुनि ने निर्भय-निस्संकोच होकर कहा, "हे राजन, एक नहीं दो।"

"वे कौन हैं? कहाँ रहते हैं? राजा ने आश्चर्य से पूछा।

"वे नर-नारायण हैं। वे गंधमादन पर्वत पर रहते हैं और वे संसार के सभी मानवो में श्रेष्ठ हैं।" इतना कह कर मुनि चले गये।

मुनि के उत्तर से राजा क्रोधित हो उठा। और अहंकार के साथ गंधमादन पर्वत की ओर निकल पड़ा। वहाँ पहुँच कर उसने देखा कि दो क्षीणकाय मुनि शिखराग्र पर बैठ कर तपस्या में लीन हैं।

उन्हें देख कर दंबोध्भव बहुत निराश हुआ। इतनी दूर से आया था, इसलिए वह चुपचाप लौटना नहीं चाहता था। उसने उन्हें ऊँची आवाज में पुकारा। किन्तु मुनियों ने आँखें नहीं खोलीं। वे शान्त, ध्यानमग्न थे। फिर राजा ने कटु बचन के बाणों से उन्हें बींधने की चेष्टा की। पर वे फिर भी निश्चेष्ट बने रहे। अन्त में राजा उन्हें गालियाँ देने लगा।

तब उन दोनों मुनियों में से एक के नेत्र खुले। उन्होंने अपने पास कुश घास का एक तिनका लिया और उसके चार भाग करके राजा की ओर फेंक दिया। दूसरे ही क्षण सैनिक अंधे हो गये और उनके रूप विकृत हो गए।

दम्बोध्भव को यह जानने में विलम्ब नहीं हुआ कि मुनियों के तपोबल और आध्यात्मिक शक्ति के सम्मुख उसका सैनिक-बल नगण्य है। उसका दर्प पल भर में चूर-चूर हो गया। अपने अपराध के लिए क्षमा माँगते हुए वह नर-नारायण के चरणों में गिर पड़ा। मुनियों ने राजा को क्षमा प्रदान करते हुए उसके सैनिकों को दृष्टि व रूप वापस लौटा दिया। फिर नर ने राजा को उपदेश देते हुए कहा, "प्रजा के प्रति प्रेम रखो। अहंकार को बश में रखो। तभी तुम सच्चे और श्रेष्ठ राजा कहलाओगे।"

अपने राज्य में लौटने के बाद दंबोध्भव ने प्रजा के साथ प्रेमपूर्वक सेवा भाव से राज्य किया और सुख-शान्ति के साथ जीवन व्यतीत किया।

वे अंग्रेजों से लड़े-भिड़े
8
रानी चेन्नम्मा
◆ वर्णन : मीरा उगरा
◆ चित्र : गौतम सेन
कित्तूर दक्षिण-पश्चिम भारत में एक छोटा मगर समृद्ध राज्य था.

उसके राजा शिवलिंग रुद्र सर्जा की 1826 में मृत्यु हो गयी. मरते समय वह अपने गोद लिये बेटे को अपनी सौतेली मां चेन्नम्मा के हवाले कर गया.

धारवाड में रहने वाले अंग्रेज पोलिटिकल एजेंट थैकरे ने राजा के गोद लिये बेटे को राजगद्दी का हकदार मानने से इन्कार कर दिया.
रानी को संदेश भेजो कि हम कित्तूर को अपने ताबे में ले रहे हैं.

चंद दिन बाद –
रानी साहिबा, अंग्रेजों ने हमारे खजाने पर ताला लगा दिया है !

गुरुसिद्दप्पा, हम अंग्रेजों को सबक सिखायेंगे. वे हमारे राज्य को इतनी आसानी से निगल नहीं पायेंगे.

दोनों पक्षों ने लड़ाई की तैयारी कर ली. 23 अक्तूबर को थैकरे दलबल के साथ आ पहुंचा.
किले का फाटक खोलो !
रानी चेन्नम्मा जी का हुक्म है, आपको अंदर न आने दिया जाए.
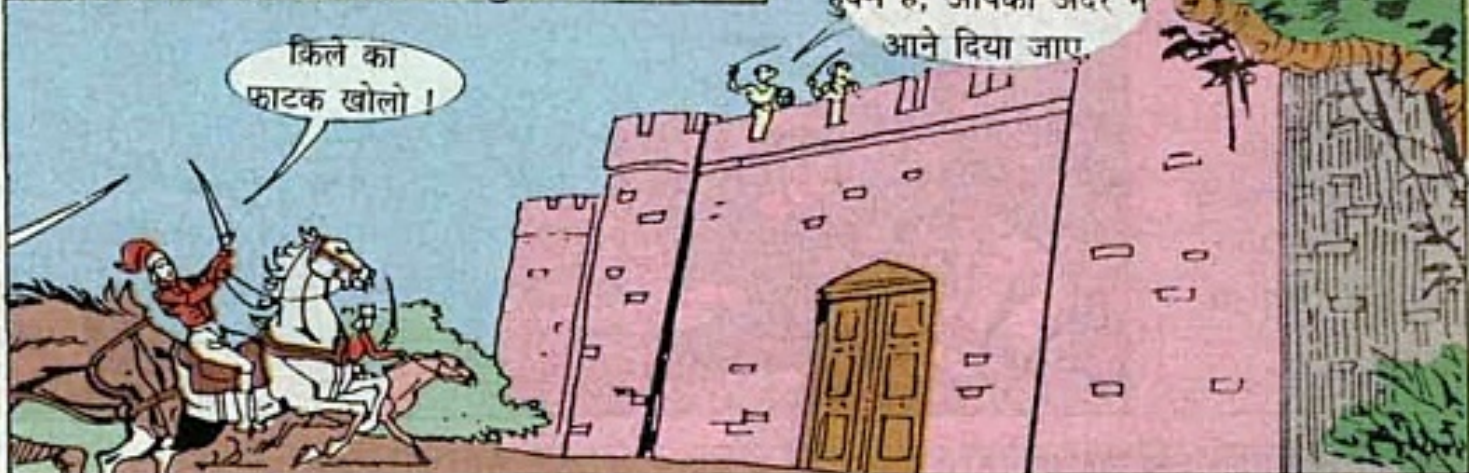
अपनी रानी से कहो कि 20 मिनट के अंदर आत्मसमर्पण कर दे. नहीं तो गोलाबारी होगी.

सब लोग सांस रोक कर रानी के जवाब का इंतजार कर रहे थे. 20 मिनट की मुहलत पूरी होने को ही थी कि –
आगे बढ़ो
धावा बोलो !

अकस्मात् हुए हमले से अंग्रेज अचकचा गये.
इन दुष्टों ने...

आह !
अंग्रेजों को धूल चटा दी गयी. खेत रहनेवालों थैकरे भी एक था.

किंतु चेन्नम्मा जानती थीं कि दूसरा युद्ध अवश्यंभावी है.
ज्यादा आदमी भरती करो. कोल्हापुर के राजा के पास मदद के लिए संदेश भेजो.
उनके दूतों को अंग्रेजों ने कोल्हापुर के रास्ते में पकड़ लिया.

लेकिन प्रजाजन अपनी रानी के गिर्द आ जुटे.
क्या जवान क्या बूढ़े सभी हमारी ओर से लड़ने के लिए आ रहे हैं रानी साहिबा !

ये रायण्णा हैं, संगोली गांव के चौकीदार.
पधारिए रायण्णा. आप जैसों की ही हमें जरूरत है.

1 दिसंबर को कर्नल मैक्लॉयड़ ने 25,000 सैनिकों और तोपों के साथ किले को आ घेरा.
किला बड़ा मजबूत है और लोग विकट लड़ाके हैं. मगर किले के अंदर का ही कोई हमारी मदद करेगा.
दो रोज बाद अंग्रेजों ने किले पर गोलाबारी शुरू कर दी...
धांय !
BOOM !
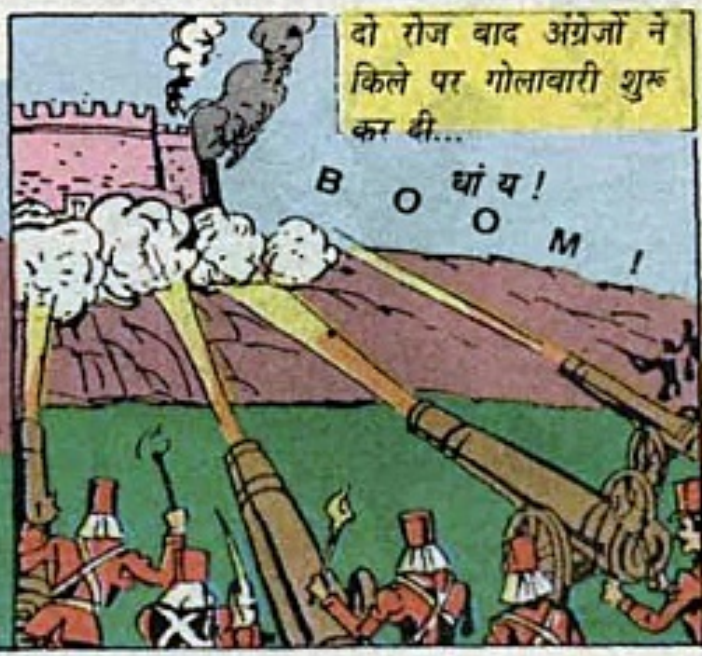
© Amrita Bharati, 1998

गिद्ध की नाकवाली जादूगरनी

ललिता भरद्वाज की एकलौती बेटी थी। यह बात किसी से छिपी नहीं थी कि ललिता नरहरि को कितना चाहती है।

भरद्वाज व्यापार करने के लिए शहर आ गया। उस समय ललिता बारहवें साल में थी। भरद्वाज ने कुछ ही वर्षों में लाखों कमा लिया। अब वह शहर का एक सम्मानित व्यापारी था।

नरहरि गाँव के एक किसान का बेटा था। अब भरद्वाज नहीं चाहता था कि उसकी बेटी का विवाह किसान के बेटे से हो। लेकिन ललिता और किसी से विवाह के लिए तैयार नहीं थी। भरद्वाज ने ललिता को बहुत समझाया, परन्तु ललिता ज़िद पर अड़ी रही। ललिता की माँ ने भी अपने पति से उसकी शादी नरहरि से ही कर देने का अनुरोध किया।

भरद्वाज शादी के विषय में बातचीत करने के लिए अपने गाँव गया। लौटकर उसने ललिता से क्रोध में कहा,-''नरहरि को भूल जाओ। उससे तुम्हारा विवाह अब कभी नहीं हो सकता।'' ललिता अपने पिता की बात सुन कर बहुत उदास हो गई।

ललिता की माँ भी बहुत चिन्तित थी। उसने अपने पति से कहा,-''तुम बताते क्यों नहीं कि बात क्या है? भरद्वाज ने बताया,-'' दो महीने पूर्व नरहरि घर छोड़ कर चला गया था। अब पता चला है कि वह गाँव की पूर्व दिशा में स्थित जंगल में एक तालाब के किनारे एक छोटी सी कुटिया में रह रहा है। वह परिवार के सदस्यों से भी, न मिलता है न बात करता है। सब कहते हैं कि वह संन्यासी बन गया है। तो ऐसे संन्यासी से भला हम अपनी बेटी की शादी कैसे करें।''

''ऐसी बात है तो हम अपनी बेटी की शादी उससे कदापि नहीं करेंगे।'' पत्नी ने भी भरद्वाज की राय मान ली।

उसने बेटी को समझाते हुए कहा,-''तुम्हारे पिता ठीक कह रहे हैं, नरहरि को भूल जाओ। अवश्य ही उसे कुछ हो गया है। नहीं तो माता-पिता को छोड़ कर वह जंगल में क्यों रहता? किसी से क्यों नहीं बोलता? तुम उसे भूल जाओ। हठ करके यदि उससे शादी की तो तुम्हारा जीवन बर्बाद हो जायेगा। माँ होने के नाते तुम्हारी वह दुस्थिति देख नहीं पाऊँगी।''

माँ की बात सुन कर ललिता रोने लगी। रात भर वह सो न सकी। सोचने लगी कि आखिर क्या

कारण हो सकता है उसके घर छोड़ने का। क्या सचमुच उसके मन में संसार से वैराग्य हो गया है? या मुझसे निराश होकर उसने यह निश्चय कर लिया? या हो सकता है, किसी संकट में फंस जाने के कारण उसने ऐसा निर्णय लिया हो।

नरहरि से मिलने पर ही सच्चाई का पता चलेगा, उसने मन में सोचा। उसने निश्चय किया कि वह उससे अवश्य मिलेगी और सच्चाई का पता लगायेगी।

ललिता अपनी जान हथेली पर लेकर उसी रात को भोर में जब उसके माता-पिता सो रहे थे, नरहरि से मिलने अकेली चल पड़ी। गाँव से बाहर जंगल में उसकी कुटिया ढूंढ़ते-ढूंढ़ते शाम हो गई। उस समय नरहरि तालाब के किनारे बैठा था।

ललिता को देखते ही वह स्तंभित रह गया। ललिता उसके पास बैठती हुई बोली, -''यह असमय अरण्यवास कैसा? क्या संन्यास का जीवन ग्रहण कर लिया है? या किसी से नाराज होकर यह निर्णय लिया है?''

उसके प्रश्नों का बिना उत्तर दिये नाराज होकर नरहरि बोला, -'' तुम क्यों यहाँ आई हो? वह भी अकेली?''

''अपनी शादी के बारे में बातचीत करने।'' बिना घबराये-सकपकाये निः संकोच हो, ललिता ने उत्तर दिया।

''शादी की बात मत करो और फौरन यहाँ से चली जाओ।'' नरहरि ने और क्रोधित होते हुए कहा।

''नहीं जाऊँगी। कारण जानने के बाद ही यहाँ से जाऊँगी। तुम्हें बताना ही होगा कि घर छोड़ कर यहाँ अरण्यवास क्यों कर रहे हो?'' ललिता के स्वर में दृढ़ता थी।

''किसी हालत में भी मैं तुझे कारण नहीं बताऊँगा। और अपना भला चाहती हो तो शीघ्र यहाँ से वापस चली जाओ।'' रोष के स्वर में बोलता हुआ तेजी से उठ कर वह अपनी कुटिया में चला गया और अन्दर से दरवाजा बन्द कर लिया।

ललिता रोती हुई, बिवश होकर, वापस आने लगी।

सूर्यास्त हो चुका था। अन्धकार फैलने लगा था। थोड़ी ही देर में यह काली भयानक रात सारी धरती को लील जायेगी। उसका हृदय कराह उठा,-"क्या यही है मेरे शेष जीवन की नियति!" उसने तारों की रोशनी के लिए आसमान को निहारा। पर दैत्याकार बादल के टुकड़ों ने उन्हें निगल लिया था। आँधी के झोंकों से जंगल चीख उठा। मृग तथा अन्य वन्य पशु भयभीत हो त्राण के लिए इधर-उधर भागने लगे। बिजलियाँ चमकने लगीं और बादलों के गर्जन के साथ वर्षा होने लगी। एक बार तो ललिता ने निश्चय किया कि वह आगे बढ़ती जायेगी। फिर भी कोई अज्ञात प्रेरणा खींच कर उसे नरहरि की कुटिया पर वापस ले आई। उसने दरवाजा बहुत देर तक खटखटाया पर नहीं खुला। किवाड़ों के बीच की फाँट से टिमटिमाती लौ के मद्धिम प्रकाश की एक रेखा बाहर के अंधकार को चीर रही थी। यही उसकी भाग्य रेखा बनेगी, उसे शायद मालूम न था। उसने उस फाँट से अन्दर जब देखा तो वह काँप गई। जिसके साहसिक हृदय को तूफानी रात भी न डरा सकी थी, वह कुटिया के अन्दर के दृश्य को देख कर भय से सुन्न हो गई। नरहरि के स्थान पर अन्दर चारपाई पर एक बड़ा गिद्ध सो रहा था। उसके रोंगटे खड़े हो गये। वह अचेत होकर वहीं गिर गई।

सवेरे-सवेरे नरहरि जब दरवाजा खोल कर बाहर आया तो वहाँ ललिता को पुनः देख कर चकित रह गया।

नरहरि ने जब उसे झकझोर कर उठाया तो उसकी चेतना वापस आई। होश में आते ही उसने पूछा,-'रात में तुम कहाँ थे? तुम्हारी चारपाई पर तो बड़ा-सा गिद्ध था।'

यह सुनकर नरहरि ने एक लम्बी साँस ली और कहा,-"ओह! तो तुमने गिद्ध को देख लिया?"

थोड़ी देर चुप रहने के बाद वह पुनः बोला,-"मैं नहीं चाहता था कि तुम्हें गिद्ध का रहस्य मालूम हो। लेकिन जब तुमने उसे देख ही लिया तो उसकी पूरी कहानी भी सुना देता हूँ।

दो महीने पहले तुमसे मिलने शहर की ओर निकला। जल्दी पहुँचने के ख्याल से जंगल के मार्ग से शहर जा रहा था। बबूल वन के पास पहुँचते-पहुँचते शाम हो गई। वहाँ एक झोंपड़ी थी। उसके सामने सन की बनी एक खाट पर एक बिकट और विकृत आकार की स्त्री बैठी थी। उसके बाल तांबे के रंग के थे और वह उनमें कंघी कर रही थी। उसका शरीर काला व नाक गिद्ध सी थी। और कंबल जैसी लाल रंग की अंगरखा पहनी हुई थी।

"मुझे देख कर उसने कहा,-"बहुत समय के बाद एक सुन्दर युवक आ रहा है। कहो, कहाँ जा

रहे हो युवक?''

मैंने रूखे स्वर में कहा, मैं अपनी होनेवाली पत्नी से मिलने जा रहा हूँ। क्या तुम्हें कोई एतराज है?''

''हाँ, हाँ, जरूर एतराज है। मुझे भी शादी करनी है। मैं भी कुंबारी हूँ। चलो, हम दोनों शादी कर लें।'' वह अपनी गिद्ध जैसी लम्बी नाक को आगे बढ़ाती हुई बोली।

'मुझे तुम स्वयं ही सुन्दर युवक बता रही हो, पर तुमने कभी दर्पण में अपना रूप भी देखा है। नाक तुम्हारी गिद्ध जैसी है। काली-कलूटी-कुरूप लगती हो।'

''मेरे मुँह से अनायास ही ये कड़वे शब्द निकल गये।

''इस पर उसे क्रोध आ गया। आँखें लाल करती हुई बोली,-'गिद्ध की नाक वाली कह कर मेरा अपमान कर रहे हो! ठीक है, तो तुम भी रात के अन्धकार में गिद्ध बन कर रहोगे और दिन में मनुष्य रह कर नाना प्रकार की यातनाएँ सहोगे।'' इतना कह कर उसने कुछ मंत्रों का उच्चारण किया।

''तब मुझे लगा वह जादूगरनी है और उसने अपने जादू का प्रभाव मुझ कर छोड़ दिया है। फिर भी, उसके जादू की परवाह किये बिना आगे बढ़ता गया। जब रात हो गई तो शरीर से असहनीय गरम आँचें निकलने लगीं और देखते-देखते मैं गिद्ध के रूप में परिवर्तित हो गया। रात भर मैं एक पेड़ पर बैठा रहा। सुबह होते ही मैं फिर से जब मनुष्य बन गया तो जादूगरनी के पास आकर बहुत गिड़गिड़ाया, पछताया, उसको अपमानित करने के लिए क्षमा माँगी। परन्तु उसने अपना जादू वापस नहीं लिया।

''अब मैं उसके शाप की ज्वाला में आजीवन जलते रहने को बाध्य हूँ। यही मेरी नियति है।''

नरहरि लम्बी साँस लेता हुआ बोला,-''मैं नहीं चाहता था कि कोई, इस रहस्य को जानें, क्योंकि सबको पीड़ा होगी। इसलिए मैं अकेला ही चुपचाप इस नरक-यातना को झेल रहा हूँ।''

ललिता ने निश्चय किया कि या तो नरहरि को जादूगरनी के शाप से वह मुक्त करेगी या अपने प्राण दे देगी। वह दृढ़ संकल्प लेकर जादूगरनी से मिलने चल पड़ी।

जादूगरनी के पास पहुँचते-पहुँचते दोपहर हो गई। उस समय वह सन की खाट पर आराम से चने खा रही थी।

ललिता सगी बहन की तरह उसकी बगल में बैठती हुई बोली,-''दीदी, यह तो भोजन का समय है। फिर चने खाकर क्यों पेट भर रही हो? तभी तुम इतनी दुबली-पतली हो।'' उसकी बातों में अपनेपन की मिठास भरी थी।

"कौन हो री! नाता जोड़ रही हो और खाट पर बगल में ऐसे बैठ गई हो मानों हम दोनों के रिश्ते बहुत पुराने हैं।" जादूगरनी ने नाराज होते हुए कहा।

अपनी ही बहन समझ लो। भला जीजा जी कहाँ हैं?" उसके गले में हाथ डालती हुई और ईर्द-गिर्द देखती हुई ललिता बोली।

"मेरे ऐसे भाग्य कहाँ? लगता है, मैं जन्म भर कुँवारी ही रह जाऊँगी और मेरे मंत्रों का अन्त मेरे साथ ही हो जायेगा।"

जादूगरनी बोली। "ऐसा क्यों कहती हो दीदी, तेरे लिए क्या यह कठिन कार्य है? यदि तुम्हें कोई युवक पसन्द है तो अपनी मंत्र शक्ति से उसका मन क्यों नहीं बदल देते?" हँसती हुई ललिता बोली।

जादूगरनी ने एक दीर्घ श्वास लिया और कहा,- "हाँ, री! काश मैं यह कर पाती। हिमालय की गुफाओं से एक जादूगर आया था। उसी से मैंने हानि पहुँचाने वाले दुष्ट मंत्र तो सीख लिये किन्तु भलाई के देव मंत्र, मन-परिवर्तन के मंत्र, दूसरों के मन के विचार जानने के मंत्र आदि सीख नहीं पाई, क्योंकि वह जादूगर जलप्रवाह में अचानक अन्तर्धान हो गया।

इतने में शकरकंद के पौधों में एक साही घुस आया और पौधों को अपने पैरों से कुरेदने लगा। जादूगरनी ने कुछ मंत्र पढ़ कर उस पर एक कंकड़ फेंका। साही तुरन्त गिरगिट के रूप में बदल गया।

"अद्‌भुत दीदी! महा अद्‌भुत!" तालियाँ बजा कर ललिता ने उसके मन को जीतने की कोशिश की। फिर पूछा, -"क्या यह गिरगिट फिर साही में बदल सकता है, दीदी?

"कहा न! प्रतिशमन मंत्र मैं नहीं जानती। इसे और निकृष्ट कीड़ा तो बना सकती हूँ परन्तु इसे

पुनः साही में नहीं बदल सकती। अपने को अवश्य जिस रूप में चाहूँ बदल दूँ।"

जादूगरनी ने अपनी मांत्रिक शक्तियों का विवरण देते हुए कहा।

ललिता बोली,-"तो क्या अब यह साही आजीवन गिरगिट की योनि में ही रहेगा और कभी भी मुक्त नहीं होगा? मरने के बाद भी नहीं?"

जादूगरनी ठठा कर हँसती हुई बोली,-"हो सकती है मुक्ति उसे इसी जन्म में, लेकिन मेरे मरने के बाद। हर जादूगर की मृत्यु के बाद, उसके जादू और मंत्र-तंत्र का प्रभाव जाता रहता है।

कुछ देर ललिता चुप रही। फिर कुछ सोच कर बोली,-"अब हमलोग सचमुच की बहन-गोतिनी बननेवाली हैं। मेरे जेठ से तुम्हारा विवाह होनेवाला है।"

"सच? यह कैसे? सब तो मुझे कुरूप समझ

कर ठुकरा देते हैं। क्या तुम अपने जेठ को मुझसे शादी के लिए मना सकोगी?''

''अब समझो दीदी, तुम्हारा भाग्योदय हो गया। मेरे जेठ को एक महात्मा ने रुष्ट होकर शाप दे दिया कि यदि सुन्दर कन्या से विवाह किया तो तुम्हारे सिर के सैंकड़ों टुकड़े हो जायेंगे। इसीलिए हमारे जेठ अभी तक कुंवारे हैं। हमलोग बहुत दिनों से उनके लिए एक कुरूप युवती की तलाश कर रहे हैं। भाग्य से तुम आज मिल गयी। तभी तो देखते ही मैंने तुझे दीदी कहा था।'' ललिता ने कहा।

प्रसन्न होकर जादूगरनी बोली,-''वाह! आज मेरा विकृप रूप ही वरदान साबित हुआ। शुभ काम में देर कैसी? चलो अब अपने जेठ से मिला दो।'' यह कह कर वह चलने को तैयार होने लगी।

''हाँ हाँ, धीरज रखो। यह भी तो सोच लो कि मेरे जेठ तुम्हें पसन्द आयेंगे कि नहीं। यदि तुमने उन्हें पसन्द नहीं किया तो... इसलिए अच्छा होगा कि तुम पहले ही उन्हें देख लो, फिर शादी की बात करेंगे।'' ललिता ने बड़ी चतुराई से कहा।

''यह तुमने ठीक सलाह दी। मैं तुम्हारे साथ तोता बन कर चलती हूँ। तुम्हारे जेठ अच्छे लगे तो वहीं अपने असली रूप में आ जाऊँगी।'' इतना कह कर जादूगरनी तोता बन कर ललिता के हाथ पर बैठ गई।

ललिता ने झट तोते की गरदन मरोड़ दी और उसके पंखों की बोटी-बोटी नोच दी। और मरे हुए तोते को लेकर वह नरहरि से मिलने चल पड़ी। नरहरि के पास पहुँचते-पहुँचते रात हो गई। नरहरि गिद्ध में परिवर्तित हो चुका था। ललिता ने मरे हुए तोते को गिद्ध के पास फेंकते हुए कहा,-''यह है दुष्टा, गिद्ध की नाकवाली तुम्हारी जादूगरनी। इसे मैंने मार डाला है। अब तुम इसके जादू से मुक्त हो।''

नरहरि शापमुक्त होकर अपने बास्तविक रूप में बदल गया।

नरहरि ने कहा,-''तुमने मुझे एक नया जन्म दिया है। मैं आजीवन ही नहीं, जन्म-जन्मान्तरों तक तुम्हारा ऋणी रहूँगा।

ललिता मुस्कुराती हुई बोली,-''क्या तुम नहीं जानते प्रिय कि ऋण के बन्धन में बंधी आत्माएँ ही पति-पत्नी बन कर धरती पर आती हैं।

गप्प!

एक बार गांव से तीन लोग पास के शहर में खरीदारी करने गए। रात हो जाने के कारण उन्हें वहीं एक सराय में रूकना पड़ा। उन तीनों में एक चरवाहा, एक चौकीदार व तीसरा माली था।

चरवाहा ने कहा, 'मैं जब भैंसे की तरह डकारता हूँ, तो आसपास के गांवों में घास खा रहे जानवर डर से भाग खड़े होते हैं।'

चौकीदार ने कहा, 'मैं जब आवाज लगाता हूं तो चोर डर के मारे छिप जाते हैं। अगर चीता भी गांव की ओर आ रहा होता है तो वापस जंगल की ओर भाग खड़ा होता है।'

माली ने कहा, 'तुमलोग ऐसी ही छोटी-मोटी बातें करते रह जाओगे। मैं तो जब मुर्गे की आवाज में बांग देता हूं, सूर्य तभी निकलता है।'

सराय के उसी हॉल में एक और व्यक्ति पहले से ठहरा हुआ था और चुपचाप सोने का नाटक कर रहा था। उसने सोचा कि इन तीनों की गप्पबाजी की जांच करनी चाहिए और फिर चीते की जोरदार गुर्राहट निकाली। आवाज सुनते ही तीनों सराय छोड़ भाग खड़े हुए।

—रामवरपु गणेश्वर राव

विश्व का विशालतम लोकतंत्र प्रगति के पथ पर

भारत राष्ट्रव्यापी चुनाव के दौर से निकल चुका है। स्वाधीन भारत के इतिहास में यह तेरहवाँ चुनाव था। हम प्रधानमंत्री, उनके मंत्रिमण्डल, सांसदगण तथा भारत की जनता को बधाई देते हैं।

प्रत्येक चुनाव एक नई लोक सभा को जन्म देता है। यह हमारी संसद के दो अंगों में से एक है। दूसरा है-राज्य सभा। एक बार नई लोक सभा बन जाने पर इसे सामान्यतः पाँच वर्षों तक कार्य करना चाहिए। इस गणना के अनुसार अब तक हमारे देश में दस बार चुनाव होना चाहिए था। यदि इससे अधिक बार चुनाव हुआ तो इसका अर्थ है कि हाल के विगत वर्षों में कुछ लोक सभाएं अपने कार्यकाल की अवधि पूरी नहीं कर पाईं। ऐसा भी इसलिए हुआ कि किसी एक अकेली पार्टी के पास निर्वाचित सदस्यों की इतनी पर्याप्त संख्या नहीं थी कि वह सरकार बना सके। इसलिए ऐसा करने के लिए कुछ पार्टियाँ आपस में मिल गईं। कभी कुछ पार्टियाँ सरकार में शामिल नहीं हुईं किन्तु सरकार को दूर से समर्थन देती रहीं। जब पार्टियों के बीच यह तालमेल नहीं रहा तो सरकार गिर गई।

भारत ने सन् १९४७ में अंग्रजों से स्वाधीनता अर्जित की। परन्तु इसके लिए इसे भारी कीमत चुकानी पड़ी। साम्प्रदायिक दंगों में हजारों निर्दोष व्यक्ति मारे गये और हमारे देश का एक हिस्सा अलग हो गया जिसे पाकिस्तान का नाम दिया गया। भारत और पाकिस्तान दोनों ने

जर्मन-साहित्य का सितारा

सन् १९९९ का साहित्य के लिए नोबेल पुरस्कार जर्मन लेखक गुन्तर ग्रास को दिया गया। सन् १९२७ में डैनज़िग में जन्मे गुन्तर ग्रास पिछले ३० वर्षों में जर्मनी के अत्यधिक प्रभावशाली उपन्यासकार रहे हैं।

उनके कई उपन्यासों में सर्वाधिक ख्यातिप्राप्त है-द टिन ड्रम यानी टिन का ढोल। इसमें लेखक समाज को ऑस्कर नामक एक बौने की नज़र से देखता है, जो लेखक के जन्म स्थान डैनजिग का रहनेवाला है। ऑस्कर की बुद्धि, भावना और समझदारी एक सामान्य बालक के समान विकसित होती है, किन्तु देखने में वह बालक जैसा ही बना रहता है।

बालक के समान वह टिन का ढोल बजाता है। हिटलर के नेतृत्व में नाज़ी शक्ति के उत्थान और पतन के पूरे काल तक वह यही करता रहता है।

लोकतंत्र को स्वीकार किया। विश्व के कुछ प्रेक्षकों की यह धारणा थी कि दोनों में से कोई भी बहुत दिनों तक लोकतंत्र को बहाल नहीं रख पायेगा। पाकिस्तान के प्रति उनकी यह धारणा सत्य साबित हुई। अपने जीवन-काल के अधिकांश समय तक पाकिस्तान में या तो सेना का शासन रहा या तानशाह का किन्तु विश्व के विशालतम लोकतंत्र के रूप में भारत का भव्य भाल तब से निरन्तर चमक रहा है। यदि हमारी जनता और हमारे राजनेता अपने-अपने उत्तरदायित्व को समझें तो भारत आर्थिक, शैक्षिक और औद्योगिक क्षेत्र में अनिर्वचनीय प्रगति कर सकता है। एशियन डेवलपमेंट बैंक की एक गणना के अनुसार यदि भारत की सरकार स्थिर बनी रही तो सन् २००० में यह एशिया की सबसे तेज़ रफ़्तार में विकसित होनेवाली अर्थ-व्यवस्था बन जायेगी। इसके लिए जनता, कर्मचारियों और राजनेताओं को अधिक देशभक्त बनना होगा। बस! सिर्फ़ इतनी जरूरत है।

सन् १९४५ में जब द्वितीय महायुद्ध हो जाता है तब आस्कर के अंग परिपक्व होने लगते हैं। किन्तु यह प्रक्रिया पुनः बन्द हो जाती है। शायद यह उस एक संवेदनशील मानवता के लिए ऑस्कर की आशाओं का सूचक है जो मूर्त रूप नहीं लेती।
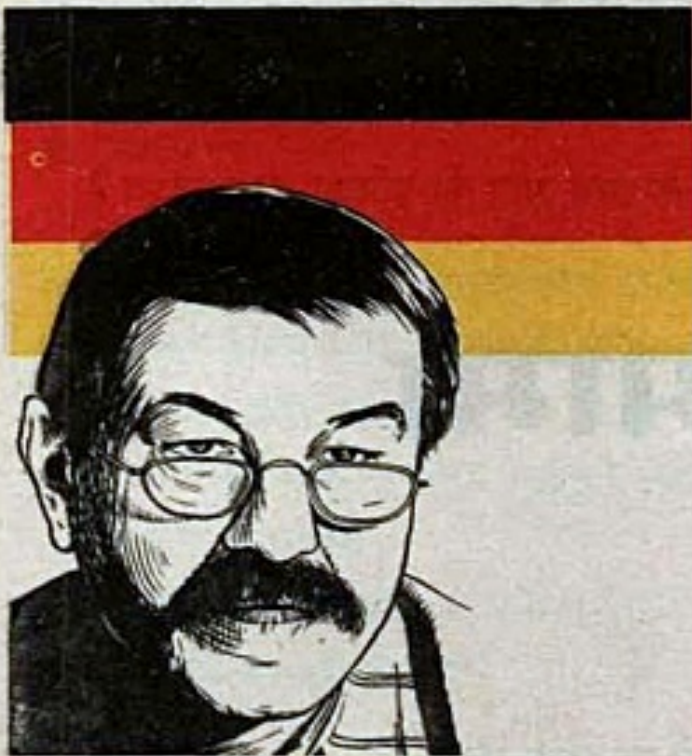
उपन्यास का अन्त एक अनिश्चितता के स्वर में होता है। एक संस्था में लगभग कैदी के समान रहनेवाला ऑस्कर मुक्त हो जाता है। किन्तु, अब वह करेगा क्या? वह किधर जाये, यह निश्चय नहीं कर पाता। वह अपना ढोल बजाने लगता है। वह उसी दिशा में जाने का निश्चय करता है जिधर उसकी आत्मा ले जाये।

और ग्रास का दूसरा उपन्यास है-द फ्लाउण्डर। यह एक ऐसे दिन को आरम्भ होता है जो हमें नवपाषाण युग के अतीत में ले जाता है और हमारे आधुनिक काल में समाप्त होता है। लेखक सभ्यता का सर्वेक्षण एक मछुआ की नजर से मज़ाकिया ढंग से करता है। फ्लाउण्डर नाम की एक मछली की सहायता से मछुआ अधिक बुद्धिमान हो जाता है। विकास के क्रम में जो महान परिवर्तन हुआ है, उसका श्रेय जाता है- स्त्री-पुरुष के बीच के संघर्ष को अथवा भोजन पकाने की कला में प्रभुत्व और नवाचार को। यही उपन्यास का कथ्य है।

चन्दामामा

आधी शताब्दी से भी अधिक समय तक चंदामामा ने अंग्रेजी और संस्कृत मिलाकर एक साथ बारह भाषाओं में-भारत के बच्चों के साथ उनकी मातृभाषा में बातचीत करते हुए उनके बीच इन्द्रधनुष के सेतु के समान उनकी सेवा की है।

एक अद्वितीय प्रयोग जिसकी लाखों बाल-पाठकों ने एवं उनके अभिभावकों ने भूरी-भूरि प्रशंसा की है।

नई शताब्दी एवं नई सहस्राब्दी के अनिर्भाव के साथ आप की पत्रिका का उद्देश्य है- नये क्षितिजों की खोज।

चन्दामामा

2000

की ज्ञानवर्द्धक सूची पर एक नज़र

■ **भारत का आख्यानः**

विश्व में कितनी ही महान सभ्यताएं पनपीं। किन्तु, भारत को छोड़ कर कोई अन्य देश सभ्यता और संस्कृति की हजारों वर्ष तक अक्षुण्ण परम्परा का गर्व नहीं कर सकता। इस प्रचण्ड प्रवाह का क्या कारण था? आख्यानों और अतीत के आश्चर्यजनक पात्रों के द्वारा इस रहस्य का उद्घाटन।

■ **भारत-तब और अबः**

प्राचीनकाल में आधुनिक गुवाहाटी को प्रयाग ज्योतिषपुर क्यों कहा जाता था? कभी छोटी द्वीपिकाओं का बिन्दु समूह लगनेवाला आज का महानगर मुम्बई कैसे बन गया? पूरे विश्व में केवल भारत ऐसा देश है जहाँ दीर्घतम के साथ अधिकतम नगर हैं। ऐसे स्थानों के आख्यान और इतिहास तथा उनकी वर्तमान स्थितियाँ।

■ **एक बेहतर और अधिक सुखी व्यक्ति बनेंः**

कुछ रोचक और व्यावहारिक युक्तियाँ जो न केवल आप को समुदाय में प्रिय बनाएंगी बल्कि आप को अपने पर्यावरण के साथ, प्रतिकूल परिस्थिति में भी, सामंजस्य स्थापित करने की क्षमता प्रदान करेंगी।

■ **आज की दुनियाः**

महत्वपूर्ण घटनाओं की पूरी जानकारी।

■ **अनसुलझे रहस्यः**

क्या यति या घृणित हिममानव का अस्तित्व है? समुद्री जहाज़ किस प्रकार बरमुडा त्रिकोण पर अदृश्य हो जाते हैं? ऐसी गूढ़ समस्याओं पर प्रकाश जो आज भी संसार के लिए अनसुलझी पहेली बनी हुई हैं।

■ **महीने का व्यक्तिः**

चालू महीने में जन्मे विशिष्ट व्यक्तित्व का जीवन और कार्य

■ **भारत की खोजः**

भारत की संस्कृति, साहित्य, परम्परा पर प्रश्नोत्तर जिसमें आप भाग ले सकते हैं। और कथा-साहित्य में कम से कम आधा दर्जन कहानियाँ-हाज़िर जवाब और शिक्षा से ओत प्रोत

इनके अतिरिक्त मुख्य समाचार, चुटकुले, महत्वपूर्ण उद्धरण पूरक के रूप में।

चन्दामामा-२००० आप का जीवन साथी और नये क्षितिज का पथ-प्रदर्शक

चित्र
कैप्शन प्रतियोगिता

क्या तुम कुछ शब्दों में ऐसा चित्र परिचय बना सकते हो, जो एक दूसरे से संबंधित चित्रों के अनुकूल हो? तुम एक सामान्य पोस्टकार्ड पर इसे लिख कर इस पते पर भेज सकते हो:

चित्र परिचय
प्रतियोगिता
चंदामामा
वडापलानि
चेन्नई-६०० ०२६

जो हमारे पास इस माह की २५ तारीख तक पहुंच जाए। सर्वश्रेष्ठ चित्र परिचय पर १००/- रुपये का पुरस्कार दिया जाएगा, जिसका प्रकाशन अगले अंक के बाद के अंक में किया जाएगा।

बधाइयां

पिछले अंक के पुरस्कार विजेता हैं
सुश्री भाग्य लक्ष्मी के.
नाखा निवास, २७ लल्लू भाई पार्क रोड,
अंधेरी(प.) मुंबई-४०० ०५८

विजयी प्रविष्टि
'प्रशंसनीय'-'प्रशंसित'

चंदामामा वार्षिक शुल्क
भारत में १२०/- रुपये भूतल डाक द्वारा

Payment in favour of CHANDAMAMA INDIA LIMITED for details address you enquires to:
Publication Division, Chandamama Buildings, Vadapalani, Chennai-600 026

Parag®
SAREES &
DRESS MATERIALS
D. NO. 1111
D. NO. 4102
PARAG PRINTS LTD.
222, 223, Ashoka Tower, Ring Road, Surat. Tel. : 91 (0261) 628734.

CHANDAMAMA (Hindi) DECEMBER 1999 Regd No. M. 5452/97
Registrar of Newspapers, India RN. 108

Maha Cruise

Ahoy!

nutrine
MAHA
LACTO

Nutrine Maha Lacto. The Best Lacto in Town.